विषय सूची





अधिकाश लोगों का ख्याल है कि भारत म वैदिक या ब्राह्मणधर्म के हास और बौद्ध या जैनधर्म के प्रचार के कारण ही शिथिलता का समावेश हुआ था। परन्तु प्रस्तुत पुस्तक के विद्वान लेखक ने जैनमत के विरुद्ध उठाये जाने वाले इस प्रवाद का अनेक प्रमाण उद्धृत कर खण्डन किया है और साथ ही यह भी सिद्ध किया है कि जैन सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिये सक्षम रह कर ही दया और अहिंसा धर्म का पालन करना आवश्यक है।

आज कल बहुत से जैन मतानुयायी अपनी मानसिक दुर्बलता की तरफ ध्यान देना अनावश्यक समझ केवल कीड़े मकोड़ों की रक्षा करने की प्रवृत्ति को ही जैनधर्म-पालन की चरम सीमा समझते हैं। परन्तु श्रीयुत कामताप्रसादजी जैन ने जैन शास्त्रों से अवतरण देकर कर्त्ता के मानसिक भावों पर ही हिंसा या अहिंसा की उत्पत्ति सिद्ध की है। साथ ही आपने ऐतिहासिक उदाहरण उपस्थित कर देश और आत्म रक्षा आदि के लिये राग द्वेष वर्जित युद्ध तक को धर्म बतलाया है।

आपकी उद्धृत की हुई महावीर की यह उक्ति—

"जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा"

अर्थात्—जो कर्म क्षेत्र में वीर हैं वे ही धर्म क्षेत्र में वीर हैं। वास्तव में ही स्वर्णाक्षरों में लिख रखने योग्य है। यही उपदेश गीता में भी दिया गया है और इसे हर समय स्मरण रखना प्रत्येक पुरुष का कर्तव्य है।

इस "भ० महावीर की अहिंसा और भारत के राज्यों पर उस का प्रभाव" की एक आध गौण बात से असहमत होते हुए भी उसके लेखक श्रीयुत कामताप्रसादजी को ऐसी उपयोगी सुन्दर और सामयिक पुस्तक लिखने के लिये हार्दिक बधाई देते हैं।

यह पुस्तक प्रत्येक भारतवासी के चाहे वह जैन हो या जैनेतर, पठन और मनन करने योग्य है।

विश्वेश्वरनाथ रेउ

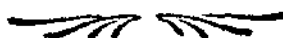


ॐ नमः सिद्धेभ्य ।

भ० महावीर की अहिंसा

और

भारत के राज्यों पर उसका प्रभाव !



(१)

भ० महावीर और अहिंसा !



'गिरिभित्त्यवदानवतः, श्रीमत इव दन्तिनः स्रवद्दानवतः ।
तव शमवादानवतो, गतमूर्जितमपगतप्रमादानवतः ॥१४२॥'

—श्री बृहत्स्वयंभूस्तोत्र ।

स्वामी समन्तभद्राचार्यजी ने आज से लगभग डेढ़-दो हजार वर्ष पहले श्रमणोत्तम भगवान् महावीर की स्तुति में कहा था कि 'प्रभो ! आप दोषों के उपशम करने वाले शास्त्रों के रक्षक हैं और प्रकृष्ट हिंसा के नाश होने से अहिंसामई अर्थात् अभयदान सहित आप का विहार इस पृथ्वी पर उसी तरह हुआ, जिस प्रकार एक भद्र और शुभ लक्षणों युक्त मद मत्त हाथी की गति होती है ।' दूसरे शब्दों में कहें तो इसका भाव यही है कि भगवान् महावीर के सदुपदेश से मुमुक्षुओं को 'सत्य' के दर्शन हो गये थे और उनके धर्म प्रचार से हिंसावादी मत प्रवर्तकों का अभाव होकर प्राणियों को सुख और शान्ति का लाभ हुआ था । इस अवस्था में भ० महावीर को अहिंसा धर्म का प्रतिपादक

कहना सर्वथा उचित है। साम्प्रत भारत में अहिंसा सिद्धान्त का चमत्कार प्रकट करने वाले स्वयं म० गांधी जी कहते हैं कि—'मैं विश्वास पूर्वक यह बात कहूँगा कि महावीर स्वामी का नाम इस समय यदि किसी भी सिद्धांत के लिये पूजा जाता है, तो वह अहिंसा है। प्रत्येक धर्म की उच्चता इसी बात में है कि उस धर्म में अहिंसा तत्व का प्रधानता हो। अहिंसा तत्व को यदि किसी ने अधिक से अधिक विकसित किया हो, तो वे महावीर स्वामी थे।'

महावीर स्वामी अहिंसा के महान् उपासक थे जरूर, पर वह थे कौन ? संक्षेप में यह जान लेना भी जरूरी है। बस, जानिये, वह जैनियों के २४ तीर्थंकरों में से सब अन्तिम तीर्थंकर थे और आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले इस धरातल को सुशोभित करते थे। वह स्वयं एक क्षत्री-पुत्र थे। उनके पिता राजा सिद्धार्थ ज्ञातृवंशी क्षत्री थे और उनकी माता त्रिशलादेवी वज्जियन राज संघ के प्रमुख राजा चेटक की पुत्री थीं। ज्ञातृवंशी क्षत्री भी वज्जियन राजसंघ में सम्मिलित थे, जो एक प्रकार का प्रजातंत्रात्मक राज्य था। इस प्रकार म० महावीर का जन्म एक स्वाधीन वातावरण में हुआ था, जिसमें 'आज्ञा' नहीं बल्कि 'न्याय और सहयोग' की तूती बोलती थी। किन्तु म० महावीर की महान् आत्मा को मात्र अपने राज्य संघ द्वारा शासित प्रदेश को ही सुखी और स्वाधीन देखकर संतोष न हुआ। उनका महान ध्येय था जीव मात्र को सुखी और स्वाधीन बनाना—विश्वप्रेम की पतितपावन जान्हवी इस धरातल पर बहा देना! बस, वह राजमहल में न ठहरे। घरको छोड़ा—वस्त्राभूषण उतार फेंके—एक लत्ता भी तन पर न रक्खा—पूर्ण परमहंस निर्ग्रंथ हो गये। 'सिद्धपद' की प्राप्ति के लिये उन्होंने महान् योग का अनुष्ठान

किया और जब तक उन्हें उसकी प्राप्ति न हुई, उन्होंने मुख न खोला, बल्कि आततायियों के आक्रमणों को भी चुपचाप सहन कर लिया। प्रेम और दुःख सहन के श्रेष्ठ मार्ग (Cult of love & suffering) को उन्होंने अपने महान् आदर्श द्वारा उपस्थित कर दिया—अहिंसा और प्रेम उनके रोम-रोम में टपका—मनुष्य तो मनुष्य पशु भी अपनी क्रूरता को गवा बैठे। उस पर आज ? आज तो भारत के राष्ट्रीय रंग मंच पर दुःख सहन का यह अहिंसात्मक मार्ग अद्भुत कौतुक दिखा रहा है—उस का चमत्कार म० महावीर के आदर्श में विलीन होकर भी आज फिर चमक रहा है। यह सत्य का माहात्म्य है और म० महावीर के संदेश की वैज्ञानिकता का प्रमाण है।

हां तो, घोर तपश्चरण और 'सत्य' की महान् उपासना के बाद तीर्थंकर महावीर सर्वज्ञ हो गये-सिद्धि उन्हें मिल गई। अब स्वयमेव ही उनका लोक-हितकारी उपदेश होने लगा। उनकी इस महान् सिद्धि का बखान उस समय के प्रसिद्ध मत-प्रवर्तक म० गौतम बुद्ध ने भी किया। अपने शिष्यों को उन्होंने बताया कि ज्ञातृ-पुत्र महावीर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी कहे जाते हैं और दुःख सहन के मार्ग द्वारा जन कल्याण का उपदेश देते हैं * । एक विपक्षी मत के शास्त्र में इस प्रकार का कथन म० महावीर की महत्ता का प्रबल प्रमाण है। फिर भला कहिये, उन्हें सर्वज्ञ क्यों न माना जाय ?

---

* 'निगण्ठो, आवुसो, नाथपुत्तो सब्बञ्ञू, सब्बदस्सावी अपरिसेसं ञाणदस्सनं परिजानाति।' अर्थात्—'निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र (महावीर) सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, वे अपार ज्ञान और दर्शन के ज्ञाता हैं।' इत्यादि—मज्झिमनिकाय (P T S) भा० १ पृष्ठ ९२–९३

अच्छा तो, सर्वज्ञ होकर भ० महावीर ने 'अहिंसा धर्म' का उपदेश प्राणी मात्र की हितकामना के लिये दिया। उन्होंने पहले ही कहा, क्योंकि वह लोक की वस्तुस्थिति को हाथ में लिये हुये दर्पण के प्रतिबिम्ब की तरह स्पष्ट जानते थे कि —

जले जंतुः स्थले जंतुराकाशे जंतुरेव च।
जंतुमालाकुले लोके कथं भिक्षुरहिंसकः ?

अर्थात्–'जल में जन्तु है, स्थल में जंतु है और आकाश में भी जंतु है। जब समस्त लोक जंतुओं से भरा हुआ है तब कोई भिक्षु (मुनि) अहिंसक कैसे हो सकता है? और उत्तर में बतलाया कि —

सूक्ष्मा न प्रतिपीड्यन्ते प्राणिनः स्थूलमूर्त्तयः।
ये शक्यास्ते विवर्ज्यन्ते का हिंसा संयतात्मनः !"

अर्थात्—सूक्ष्म जीव (जो अदृश्य होते हैं तथा न किसी से रुकते हैं और न किसी को रोकते हैं) तो पीड़ित नहीं किये जा सकते, और स्थूल जीवों में जिनकी रक्षा की जा सकती है उनकी की जाती है, फिर मुनि को हिंसा का पाप कैसे लग सकता है? इस कथन से स्पष्ट है कि भावों की प्रधानता पर ही अहिंसा धर्म टिका हुआ है। यदि कोई व्यक्ति प्रगटतया चींटी-चिउटी आदि जीवों को मारने से तो डरता है, किन्तु रात दिन क्रोध-मान और लोभ के ताप में तपा हुआ दूसरों को दुःख पहुचाने और नष्ट करने का भाव रखता है, तो वह अहिंसावादी नहीं है। किसी को वस्तुतः दुःख पहुचाने और नष्ट न करने पर भी वह महान् हिंसक है, क्योंकि उसके भाव-उसकी नियत वैसी ही है। इसलिये भगवान् ने कहा है कि —

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः॥ †

"सचमुच कषाय भावों का अभाव ही अहिंसा है और उनका सद्भाव हिंसा है। जिनागम का संक्षेप निष्कर्ष ही यह है। इसे न भूलिये और फिर सावधानी से काम कीजिये, आप पूर्ण अहिंसक होंगे। यही कारण है कि लोक में जंतु ही जंतु भरे रहने पर भी एक भिक्षुक पूर्ण अहिंसक हो सकता है। इस दृष्टि से ही भ० महावीर ने हिंसा को दो प्रकार का बताया है (१) भाव हिंसा और (२) द्रव्य हिंसा अर्थात् स्थूल शरीरादि प्राणों का घात करना। किन्तु साथ ही यह स्पष्ट कर दिया है कि भाव हिंसा के बिना कोरी द्रव्यहिंसा हिंसा नहीं कही जा सकती। इसलिये जो व्यक्ति यत्नाचार पूर्वक कार्य करता है-उसके भाव दया से भीगे हुये हैं, यदि उससे कदाचित् द्रव्य हिंसा भी हो जावे तो वह हिंसा का दोषी न होगा। भगवान् कहते हैं —*

मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा।
पयदस्स णत्थि बन्धो हिंसामेत्तेण समिदस्स॥

अर्थात्—जीव चाहे जिये चाहे मरे, परन्तु जो अयत्नाचार से काम करेगा उसे अवश्य ही हिंसा का पाप लगेगा। लेकिन जो मनुष्य यत्नाचार से काम कर रहा है उसे प्राणिवध हो जाने पर भी हिंसा का पाप नहीं लगता।

किन्तु यहां पर शंका यह होती है कि एक गृहस्थ के लिये स्थूल जीवों की सर्वथा रक्षा करना असंभव है, उसे जीवन निर्वाह के लिये शस्त्रास्त्रों का भी उपयोग किसी न किसी समय करना ही

† पुरुषार्थसिद्ध्युपाय श्लोक ४४
* सर्वा० स० टीका

पड़ता है। इस दशा में वह अहिंसक कैसे रह सकेगा? भगवान् महावीर ने अहिंसा के दो भेद करके इस शंका का निवारण पहले ही कर दिया है। वह कहते हैं कि अहिंसा का सर्वथा पालन तो गृह त्यागी मुनिजन ही कर सकते हैं। यह 'अहिंसा महाव्रत' है। किन्तु गृहस्थ आंशिक रूप में ही उसका पालन करें। यह 'अहिंसा अणुव्रत' है। दूसरे शब्दों में यूं कहना चाहिये कि भ० महावीर ने गृहस्थ के लिये केवल जान बूझकर बिना प्रयोजन सकल्प करके किसी जीव को मारने या कष्ट पहुंचाने की मनाई की है। वैसे आरम्भी, उद्योगी और विरोधी हिंसा का त्यागी वह नहीं होता। अपने जीवन निर्वाह के लिये वह उनका त्याग कर ही नहीं सकता क्योंकि गृहस्थाश्रम को चलाने के लिये उसे कूटना पीसना आदि गृहकर्म करके 'आरम्भी हिंसा' करनी होगी तथा आजीविका के उपार्जन द्वारा वह उद्योगी हिंसा' से भी नहीं बच सकता एवं अपने आश्रित लोगों की रक्षा अथवा आत्मरक्षा के लिये उसे 'विरोधी हिंसा' भी करनी होगी। सारांशतः एक गृहस्थ यथासम्भव अपने भावों को दया से ओत प्रोत रखकर कम से कम हिंसा करने का उद्योग करेगा। यही उस का अहिंसाव्रत है। उसे अपने भावों को दया के कांटे पर हर समय तोलते रहना चाहिये। इस प्रकार की सावधानी रखने से वह निरर्थक हिंसा न कर सकेगा और पर अपराधी को दण्ड देते हुये भी उसके भाव क्रूर न हो पायेंगे।

इस प्रकार के व्यवस्थित अहिंसा-धर्म के विधान में कायरता के लिये कहीं स्थान ही नहीं है, बल्कि भगवान् महावीर तो कहते हैं कि 'जे कम्म सूरा ते धम्म सूरा' अर्थात् जो कर्मवीर हैं वही धर्मवीर बन सकते हैं। इसीलिये जैन सिद्धान्त में मोक्ष पाने के लिये यह भी एक शर्त है कि श्रेष्ठतम शरीर वज्रवृषभ-नाराच संहनन आदि को धारण करने वाला पुरुष ही उसे पा सकता है। अतः शरीर

को भुला दन से अर्थात् शारीरिक बल बढ़ानका ध्यान न रखनेस कोई भी व्यक्ति धम का पालन नहीं कर सकता। अहिंसक बनन के लिय पराक्रमी होना पहले परमावश्यक है, क्योंकि अहिंसा मार्ग पर चलना कोई हसी खेल नहीं है। वह तलवार की धार पर चलना है। अत अहिंसक बननेके लिये मनुष्यको शारीरिक बल और आत्मबल दोनों को ही सचय करना आवश्यक है।

भगवान महावीर ने प्रत्येक मुमुक्षु को पहले ही सावधान कर दिया था कि 'यदि तुम मेरे धम पर विश्वास लाना चाहते हो तो नि शङ्क बन जाओ× किसी तरह की शङ्का और भय दिल में न रक्खो। प्रेम और एक मात्र प्रेम को अपने हृदय में स्थान दे कर जगत को अभयदान दो।' उन्होंने स्वय इस सन्देश को अपने आदर्श में मूर्तिमान् बना दिया। लोक कार्य में लगे हुय

× सम्यक्त्व के नि शङ्कित अङ्ग का प्रतिपादन 'पञ्चाध्यायी' में यू किया गया है'—

शङ्का भी, साध्वस भीतिभयमेकाभिधा अमी।
तत्र निष्क्रान्तितो जातो भावो नि शङ्कितोऽर्थत ॥ ३८१ ॥

अर्थ—शका, भी, साध्वस, भीति, भय, ये सभी शब्द एक अर्थ के वाचक हैं। उस शका अथवा भय से रहित जो आत्मा का परिणाम है, वहीं वास्तव में नि शकित भाव कहलाता है।" इस नि शंकित भाव को हृदय में बनाये रखने के लिये 'पञ्चाध्यायी' के कर्ता (१६वीं श०) श्रावकों को अभय रहने का उपदेश देते हैं। वह कहते हैं कि —

'अर्थोत्तर कुदृष्टिर्य स सप्तभिर्भयैर्युत'।
नापि स्पृष्ट सुदृष्टिर्य स सप्तभिर्भयैर्मनाक् ॥ ४९४

अर्थ—"उत्तर में यह जानो कि जो मिथ्यादृष्टी है उसीको ही सात प्रकार के भय हुआ करते हैं। जो सम्यग्दृष्टी है उसको कोई भी भय थोड़ा सा भी नहीं छू पाता।"

लोगों को उन्होंने सावधान किया और कहा- 'भाई ! अपनी आजीविका न्याय-पूर्वक उपार्जन करो। अन्याय और अत्याचार को न स्वयं अपनाओ और न दूसरे को अपनाने दो। तुम खुद जीओ और दूसरों को न केवल जीने ही दो, किन्तु उनके जीवन सुखी बनाओ। प्राणियों को अहिंसा धर्म का महत्व समझाओ। यदि वे न मानें और अन्याय पर तुल पड़ें तो तलवार के बल से उन्हें राह-रास्त पर ले आओ। किन्तु खबरदार ! निरर्थक हिंसा मत करो। बुरे से बुरे जीव पर भी दया भाव रखना।' इस सन्देश को ही लक्ष्य कर भगवान् महावीर के धर्म में गृहस्थ की आजीविका के उपायों में 'असि-कर्म' अर्थात् सैनिक कर्म ही उसी तरह सर्व प्रधान रक्खा गया है, जिस तरह पहले तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेवजी ने युगों पहले इसे नियत किया था × सचमुच जब जीवों को अभय और सुखी जीवन बिताने का अवसर मिलेगा तभी वह राष्ट्र में धर्म की वृद्धि कर सकेंगे। इसीलिये भगवान् ने असिकर्म को मुख्य बताया है, लेखनी, हल और वाणिज्य आदि उसके पश्चात् रक्खे हैं। किन्तु इस कर्मको पालते हुये भी एक सैनिक को वह अहिंसक बनाते हैं, क्योंकि उसकी अहिंसा मात्र निरर्थक हिंसा से बचना है।

('निरर्थक वधत्यागेन क्षत्रिया व्रतिनो मताः')

—सागारधर्मामृत

अपने कर्तव्य पालन करने के लिये वह जो हिंसा करता है, वह उसके लिये क्षन्तव्य है, क्योंकि उसे अपने राष्ट्र धर्म का

× श्री ऋषभदेव जी ने आजीविका के छः उपाय इस प्रकार बताये थे —
"असिमषि कृषिविद्या वाणिज्यं शिल्पमेव च।
कर्माणीमानि षोढा स्युः प्रजाजीवनहेतवे ॥" आदिपुराण (पर्व १६) श्री जिनसेन

भी पालन करना है और दीन दुर्बलों की रक्षा तथा अन्याय-अत्याचार मेंटना है। इसीलिये श्री सोमदेवाचार्य उनके इस धर्म को दयाभाव का ही परिणाम बताते हैं× और कहते हैं कि —

यः शस्त्रवृत्तिः समरे रिपुः स्यात्, यः कण्टको वा निज मडलस्य।
अस्त्राणि तत्रैव नृपाः क्षिपन्ति, न दीन-कानीन-शुभाशयेषु ॥
(यशस्तिलक उ० पृ० ९६)

अर्थात्—"जो रणागण में युद्ध करने को सन्नद्ध हों अथवा अपने देश के कण्टक—उसकी उन्नति में बाधक—हों, क्षत्रिय वीर उन्हीं के ऊपर शस्त्र उठाते हैं—दीन, हीन और साधु आशय वालों के प्रति नहीं।" अतः कहना होगा कि भगवान् महावीर की अहिंसा न किसी राष्ट्र की उन्नति में बाधक है और न उसमें धर्मोत्कर्ष रुकता है। वह तो प्राणीमात्र के अभ्युदय के लिये एक रक्षण-सीमा है। और सच पूछिये तो जब जब भारत में उस की प्रधानता हुई तब तब यहाँ की दशा सुख समृद्धिशाली रही। इस कथन का प्रत्यक्ष अनुभव कतिपय राज्यों पर अहिंसा-प्रभाव का दिग्दर्शन करते हुये पाठकगण आगे पढ़ेंगे!

साधारणतः भ० महावीर की अहिंसा को लोग इतना व्यापक नहीं जानते हैं, परन्तु यह अज्ञान का फेर है। उस रोज एक अंग्रेज विद्वान् श्री हेरस महोदय (Rev H Heras S J) ने पत्थर पर लिखी हुई एक वीर गाथा पढ़ी। उस में लिखा था कि 'सेनापति बेचप्प ने कोङ्कण के युद्ध में अपनी वीरता दिखाई—सैकड़ों कोङ्कणियों को तलवार के घाट उतार दिया—फलतः उसे स्वर्ग-सुख नसीब हुआ और जिनेन्द्र भगवान् के चरणों की

× 'दीनाभ्युद्धरण बुद्धिः कारुण्य करुणात्मनाम्।'
—यशस्तिलकचम्पू। (१०वीं शताब्दि)

निकटना मिलीं० ।' यह उपहार इस जैन सेनापति को मिला पढ़ कर उक्त विद्वान् आश्चर्य में पड़ गये। यह समझे, एक जैनी ने यह एक अनोखा काम किया ! किन्तु इसमें अनोखापन कुछ भी नहीं है—क्षत्रिय कर्म तो जैनी का प्रथम धर्म है, चाहे लौकिक कर्म हो और चाहे परमार्थ का। बस, बैचप्प ने भी यही किया ! उसके देश पर लगातार आक्रमण करके कोङ्कणी देश और धर्म-दोनों का नाश करते थे। यह उनका महान् अत्याचार था। इस अत्याचार को मेटने के लिये बैचप्प उनसे जूझ मरे—उन्हें वीर गति प्राप्त हुई ! वह सच्चे जैनी थे—फिर भला उन्हें क्यों न जिनेन्द्र भगवान की शरण प्राप्त हो ? वह अकेले ही ऐसे वीर नहीं हैं—

---

* क्वार्टर्ली जर्नल आफ दी मीथिक सोसाइटी भा० १० पृ० २५

ईस्वी १४वीं शताब्दि में विजयनगर हिन्दू साम्राज्य के शासक राजा हरिहरराय द्वितीय थे। इन्हीं के सेनापति बैचप्प थे। बैचप्प जैनधर्म के उपासक बांके वीर थे। उनका कुल ही वीरों की खान था। विजयनगर साम्राज्य के अधिपति बुक्कराय प्रथम के दण्डनायक बैच उनके पितामह थे। मंगप्प उनके पिता और जानकी उनकी माता थी। इरुगप उनका छोटा भाई था। वह भी अपने बड़े भाई की तरह दिलावर वीर था और साथ ही धर्मशास्त्र का भी ज्ञाता था। इरुगप ने संस्कृत भाषा में 'नानार्थ रत्नमाला' नामक कोष ग्रन्थ रचा था। मालूम होता है, अपने बड़े भाई बैचप्प के वीरगति प्राप्त करने पर इरुगप विजयनगर साम्राज्य के सेनापति हुये थे। सन् १३८० ई० में हरिहरराय ने कोङ्कण प्रदेश पर धावा बोला था और उस युद्ध में ही वीर बैचप्प काम आये थे। वीर बैचप्प के बहुमूल्य प्राणों की आहुति का यह सुफल निकला था कि मुसल्मान कोङ्कण प्रदेश को छोड़ भागे। इस विजय और बैचप्प की वीरगति का वर्णन करने वाला एक वीरगल लोगों ने निर्मित कराया था, जिसका वर्णन 'एपीग्रेफिया कर्णाटिका' (Ep Car VIII 152) में लिखा है। इरुगप ने विजयनगर में एक 'कुन्थुजिनालय' नामक मंदिर बनवाया था और गोम्मट वर तीर्थ आदि को दान भी दिया था। (देखो जैनशिलालेख संग्रह, मा०ग्र० भूमिका पृष्ठ १०४)।

उन जैसे अनेक जैन-वीरों के नामों और कामों का पता आज इतिहास को है !

किन्तु भ० महावीर की अहिंसा का वास्तविक चमत्कार तो उसके 'महाव्रत' रूप में है। उसका पालन भी अगणित वीर कर चुके हैं। वे सचमुच महावीर हैं। वे मन-वचन-काय से पूर्ण' अहिंसा धर्म का पालन करते हैं। अपने प्राणों का मोह भी उन्हें अपने धर्म से विचलित नहीं करता। आततायी के सब ही प्रहारों को वह चुपचाप सहन कर लेंगे, किन्तु सत्य और अहिंसा पर अडिग रहेंगे। महावीर स्वामी ने स्वयं रुद्र के उपसर्ग को सहन करके यह आदर्श उपस्थित किया और फिर श्री जम्बूकुमार, सेठ सुदर्शन आदि अनेक वीरों ने उसकी व्यवहारिकता को सिद्ध कर दिखाया। और आज सामूहिक रूप में उसका चमत्कार म० गांधी दिखा रहे हैं। यह जैन अहिंसा के प्रभाव का प्रत्यक्ष प्रमाण है। म० गांधी के अपने सिद्धान्तों के निर्माण में सब से अधिक सहायता जैन कवि रायचन्द्रजी से मिली है, यह बात वह स्वयं प्रगट कर चुके हैं*। अस्तु, यह स्पष्ट है कि भ०महावीर की अहिंसा कितनी व्यापक, महत्वशाली और व्यावहारिक है। किन्तु यहां पर यह देख लेना अनुचित नहीं है कि भ० महावीर के पहले भारत में अहिंसा का क्या रूप था ? अस्तु,

---

* सभापति की हैसियत से अहमदाबाद की रायचन्द्र जयन्ती के समय महात्माजी ने कहा था —यूरुप के तत्व ज्ञानियों में मैं टालस्टाय को पहली श्रेणी का और रस्किन को दूसरी श्रेणी का विद्वान समझता हूं पर श्रीमत् राजचंद्र भाई का अनुभव इन दोनों से भी बढ़ा चढ़ा था' और भी कहा है 'उनके विषय में मेरे गहरे विचार हैं। मैं कितने ही वर्षों से भारत में धार्मिक पुरुष की शोध में हूं परन्तु मैंने ऐसा धार्मिक पुरुष भारत में अब तक नहीं देखा जो श्रीमद् भाई रायचन्द्र के साथ प्रतिस्पर्द्धा में खड़ा हो सके।

(२)

भ० महावीर के पहले भारत में अहिंसा !

कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा ।
अक्लेशजननं प्रोक्ता अहिंसा परमर्षिभिः ॥

—श्रीमद्भगवद्गीता ।

महावीरस्वामी के पहले हुये बाइसवें तीर्थंकर श्री अरिष्टनेमि के समकालीन श्रीकृष्ण महाराज कहते हैं कि 'मन, वचन और कर्म से सर्वदा किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचाना इसी को महर्षियों ने अहिंसा कहा है।' अतः यह मानना पड़ता है कि भ० महावीर से पहले भी भारत में अहिंसा धर्म का अस्तित्व था। किन्तु वह कब से था और कैसा था? यह जान लेना आवश्यकीय है।

भारतीय साहित्य में वेद प्राचीन ग्रन्थ माने जाते हैं। उनमें भी ऐसे उल्लेख मिलते हैं, जो उस समय भारत को अहिंसा प्रधान देश प्रमाणित करते हैं। ऋग्वेद में राक्षसों और मांस-भक्षकों को श्राप दिया गया है*, जो अहिंसा के महत्व का परिचायक है। और 'यजुर्वेद' (१८।३८) में स्पष्ट कहा गया है कि

* ऋग्वेद (१०।८७।१६) में उल्लेख है कि 'मित्र' जो व्यक्ति पशु के मांस से अपने को अपवित्र बनाता है अथवा घोड़े या मानव शरीरों के मांस से, तो उसका सिर फोड़ डालो।' एक जगह अग्नि से प्रार्थना की गई है कि 'हे अग्नि! मांस भक्षकों को मार और उन्हें अपने मुख में रखले।' (ऋग्वेद १०।८७।२)। अन्यत्र यह भी कहा गया है कि "मांसभक्षक सन्तान रहित हों।" (ऋग्वेद ११।२१।५)। राक्षसों और मांस भक्षकों को श्राप देने का वैदिक उल्लेख विल्किन्स सा० की पुस्तक "हिन्दू माइथोलॉजी" पृष्ठ २७ पर दिया हुआ है।

"समस्त जीवित प्राणियों को मैं मित्र की भांति समभाव से देखूंगा।" इसके साथ ही 'अथर्ववेद' की प्रथम ऋचा भी इसही प्रकार की शिक्षा देती है :—

'ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वरूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बलातेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ १ ॥'

अन्वयार्थ—(ये) ये (त्रिषप्ता) त्रिषु जलस्थलान्तरिक्षेषु सप्तधा (विश्वरूपाणि बिभ्रत) अनेक विध शरीराणिधारयन्तो नाना जन्तव (परियन्ति) सर्वत्र भ्रमन्ति (तेषाम्) जलस्थलान्तरिक्षचराणां विविध जीवानाम् (तन्व) शरीराणि (बला) बलवान् श्रेष्ठ इति यावत् अथवा (बला) बलात्कारान्यायनेति यावत् (वाचस्पति) वेदवाण्या पालको विद्वान् (अद्य) न हिनस्तु किन्तु (मे) मा मीणयन्तु (दधातु) पुष्णातु। भावार्थ—महाकारुण्य को जगदीश्वरो जीवान् वाचयति—"सर्वैश्वर्यैक्कारणीभूताये मज्जातय विद्यन्ते सर्व जन्तव. सदा रक्षणीया न च तेषु केचन हिंसनीया" ।

भाव यह है कि समस्त पृथ्वी, जल और आकाश में बहनेवाले विविध प्रकार के जीवित प्राणी जो इस संसार में चक्कर लगा रहे हैं उनको वेदों का ज्ञान अथवा वेदों में श्रद्धा रखने वाला व्यक्ति कभी न मारे। बल्कि जो मनुष्य (ईश्वर) की खुशी चाहे वह सदैव उनके प्राणों की रक्षा करे। अत वेदों के इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि यहां एक अत्यन्त प्राचीन काल से अहिंसा धर्म की प्रधानता रही है।

जैनशास्त्र भी वेदों की इस मान्यता का समर्थन करते हैं। उनका कहना है कि इस कल्पकाल में जब भोगभूमि का अभाव और कर्मभूमि का प्रादुर्भाव यहां हुआ—लोगों को परिश्रम करके

खाने-कमाने की [illegible], तो यहाँ [illegible] के साथ [illegible] करती। [illegible] विद्यासागर के [illegible] साथ [illegible] की [illegible] और [illegible] का [illegible] दिया। [illegible] बहु [illegible] [illegible] पक्ष की यह [illegible] भारत में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुए और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सहित और [illegible] [illegible] के लिए [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुए। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में थी। ×

किन्तु [illegible] [illegible] [illegible] कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

× [illegible]

[illegible] [illegible] के [illegible] है —

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] (…) [illegible] के [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] के [illegible] है। ([illegible] पृ० [illegible]) [illegible] के [illegible] [illegible] (…) में है।

यह पवित्रता नष्ट कर दी। उन्होंने वेदों के नयर अर्थ लगाकर ही सतोष न किया, वल्कि नयेर मत्र और शास्त्र भी रच लिये। उनके अनुसार जीवों की हिंसा करना एक धार्मिक कृत्य बन गया। * अहिंसा की पवित्रता नष्ट होगई और तब से अहिंसा और हिंसा दोनों ही मान्यताओं के लोग भारत में होते चले आये। वेदों में

* भ० शीतलनाथ क तीर्थ से यह बातें आरंभ हुई और भगवान् मुनि सुव्रतनाथ क समय में वह पूर्णता को प्राप्त हो गई। इसही समय से हिंसामय यज्ञों का प्रचार हो गया। देखो "उत्तरपुराण" पृ० १०० — "शीतलेशस्य तीर्थान्त सद्धर्मो नाशमयिवान्। यस्तूश्चोनू चरिप्णुनाममात्कालशापत" ।—"इत्यानीय गृहाद्द्याक तत्पुस्तकमवाचयत् ॥ ८३ ॥ इत्य तैनेंगितज्ञेन लब्ध्वायसमुत्पय। मुड्शालायनेनोक राजातद्धमभगान ॥ ८४ ॥' और पृष्ट २५१-२६० म यज्ञ विधान का वर्णन देखो) वाल्मीकीय रामायण भी इस बात का समर्थन करती है। उससे प्रकट है कि 'हिंसक यज्ञ का ज़ोर इसी समय हुआ। (In the epic age the sacrifices were very popular institutions' Hindu ethics p 445) किन्तु उसी 'रामायण' में यह भी उल्लेख है कि "जब रामचन्द्रजी 'राजसूय यज्ञ' करने को तैयार हुए तो भरत जी ने उन्हें रोका और कहा— 'तुम समस्त पशुओं और विश्व के रक्षक हो, अतएव तुम्हारा इस यज्ञ से क्या भला होगा ? इस प्रकार क यज्ञों द्वारा सब ही राजवंश नाश को प्राप्त होते हैं।' " ('When Rama proposes perform to the Rajasuya sacrifice, Bharata says, 'Thou art the refuge of all animals & the universe Therefore, of what use is such a sacrifice unto thee? In such a sacrifice, all the royal families meet with ruin' Ramayana, VII 83 7-20 " quoted in the Hindu Ethics p 446)। जैन 'उत्तरपुराण' से भी स्पष्ट है कि उस समय मगध कौशल आदि के लोग अहिंसा धर्म के हिमायती थे। (पृ०३३६

भी हिंसा का विधान कर दिया गया। जैन श्रमण सदा सर्वदा अहिंसा के पोषक रहे * और अन्ततः उनकी छाप उनके विरोधी वैदिक ऋषियों पर पड़ा। § म० अरिष्टनेमि से प्रारम्भ होकर म० महावीर के बाद तक यहाँ अहिंसा का मामा पुनरुत्थान हुआ। यहाँ तक कि इस समय के रचे हुए वैदिक और बौद्ध ग्रन्थ भी अहिंसा के गीतों से भरे हुए मिलते हैं।

यह बात कथन जैनग्रन्थों में ही नहीं कहा गई है, बल्कि हिन्दू 'महाभारत' और बौद्ध ग्रन्थ भी यही कहते हैं। 'महाभारत' (शान्ति पर्व ३३९ अ०) में लिखा है, "राजा वसु द्वारा न उत्तम ऋषि ब्राह्मणों से कहा कि शब्द 'अज' का अर्थ बकरा लगाना चाहिये। ऋषियों ने इसका उत्तर इस भांति दिया कि वैदिक श्रुति यह घोषणा करती है कि यज्ञ कथन बीजों (अनाज) द्वारा ही किया जाता है, इन्हीं को 'अज' कहते हैं। बकरा को वध करना तुमको उचित नहीं। किन्तु राजा वसु ने उनकी बात न मान कर हिंसक मत की पुष्टि की। यद्यपि वह स्वयं वानप्रस्थियों द्वारा एक अश्वमेध यज्ञ कर चुका था। † वस्तुतः इन यज्ञों का मतलब पशुओं का होमना नहीं था—उनका मतलब इन्द्रियों का निग्रह

* जैन श्रमण वैदिक काल में मौजूद थे, यह बात हम अन्यत्र प्रमाणित कर चुके हैं। (देखो "भगवान् पार्श्वनाथ" की प्रस्तावना)

§ लोकमान्य तिलक ने यह बात भिन्न शब्दों में स्वीकार की थी —

"अहिंसा परमो धर्मः —इस उदार सिद्धांत ने ब्राह्मण धर्म पर चिर स्मरणीय छाप मारी है। पूर्व काल में यज्ञ के लिये असंख्य पशु हिंसा होती थी, इसके प्रमाण 'मेघदूत काव्य' आदि अनेक ग्रन्थों से मिलते हैं। ... परंतु इस घोर हिंसा का ब्राह्मण धर्म से विदाई ले जाने का श्रेय जैनधर्म के हिस्से में है।'

—"अजैन विद्वानों की सम्मतियां" पृ० ८

† शान्तिपर्व अ० ३३७

करता था। 'महाभारत' में यही कहा गया है कि "इन्द्रियों को पशु बनाओ, धर्म को वेदी बनाओ और अहिंसा की आहुति दो। ऐसा आत्मयज्ञ मैं (कृष्ण) सदा करता हूँ×।" "शतपथ ब्राह्मण"१ और "मनुस्मृति"२ में जो यज्ञ का स्वरूप बताया गया है, वह भी अहिंसा धर्म का पोषक है। उनसे यही प्रमाणित होता है कि मूल में वेदों के मंत्र अहिंसा धर्म के ही प्रचारक थे। किन्तु उपरान्त उनकी अलंकृत भाषा से अनुचित लाभ उठाकर क्रूर और मायावी लोगों ने उनके आधार से हिंसा का प्रचार कर डाला और मांस भक्षण का रिवाज भी चल पड़ा३, किन्तु उपरान्त अन्तिम

× शांतिपर्व—"सत्यमार्ग" पृ० १२०

१ सत्यमार्ग, पृ० १२५–१२६

२ अहुतं च हुतं चैव तथा प्रहुतमेव च।
ब्राह्म्यं हुतं प्राशितं च पंचयज्ञान् प्रचक्षते ॥
जपोऽहुतो हुतो होमः प्रहुतो भौतिको बलिः।
ब्राह्म्यं हुतं द्विजाग्र्यार्चा प्राशितं पितृतर्पणम् ॥

भावार्थ—ऋषियों ने पाँच प्रकार के यज्ञ बताये हैं–(१) अहुत, (२) हुत (३) प्रहुत, (४) ब्राह्म्य हुत, (५) और प्राशित। यह क्रमशः दैनिक, पाक्षिक, मासिक आदि होमों के करने के द्योतक हैं, इनमें दीन दुखियों और पशुओं को भोजन कराना तथा ब्राह्मणों को दान दिया जाता है। इनमें पशु हिंसा नहीं की जाती। (See 'An Essay on Cow Protection' by Pt Dwarka Pd p 10)।

३ ऋग्वेद में कहा गया है कि "वह अग्नि जो पशु का मांस, घोड़े का मांस और मानव शरीरों का भक्षण करते हैं उनके सिर भिन्न, फोड़ डालो"। (१०।८७।१६) अथर्ववेद अ०६ ऋचा ७०-१ में मांस, सुरापान आदि अभक्ष्य बताये गये हैं। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि भारत में पहले द्विज लोग–आर्य मांस का भक्षण नहीं करते थे। उनमें यह रिवाज रामायण काल से चल पड़ा है।

तीर्थंकरों के उद्योग से अहिंसा धर्म का सिक्का भारत में एक बार फिर जम गया था। यही कारण है कि 'ऐतरेय ब्राह्मण (६।८) और अन्य हिन्दू ग्रन्थों में पहले हिंसक यज्ञों के होने और तदनन्तर उन्हीं का वनस्पतिमय अहिंसक यज्ञों में परिणत हो जाने के उल्लेख मिलते हैं।

हमारे उक्त कथन का समर्थन बौद्ध शास्त्र 'सुत्तनिपात' के सातवें 'ब्राह्मण धम्मक सुत्त' से भी होता है। उसमें लिखा है कि "प्राचीन ब्राह्मण ऋषि इन्द्रिय निग्रह में दत्तचित्त समाधीन थे। उनसे पांचों इन्द्रियों के विषय दूर थे। उनके पास केवल आत्मध्यान का अपूर्व कोष था। वह लोग चावल, कपड़े, घी और तेल उचित रीति से इकट्ठा करके उन से यज्ञ करते थे। वे यज्ञों में गउओं को नहीं होमते थे। इन साहसी और धर्मनिष्ठ ब्राह्मणों का अस्तित्व जबतक रहा तब तक यह जाति फलती फूलती दशा में रही, परन्तु उपरान्त उनमें परिवर्तन हो गया। राजाओं के ऐश्वर्य और सम्पत्ति को देखकर उनका जी ललचाया। उन्होंने तब उस सबंध में ऋचायें रचीं और राजा लोगों से धन-सम्पत्ति का यज्ञ करने को कहा। परिणामतः अश्वमेध, पुरुषमेध आदि किये गये और ब्राह्मणों को खूब दान दक्षिणा मिली। इसपर देवता, पितृगण आदि चिल्ला उठे कि यह घोर अन्याय है। इस से रोग बढ़े हैं। यह अन्याय प्राचीन समय से चला आ रहा है। यह ब्राह्मण धर्म से च्युत हो गए हैं" *। सारांश यह कि म० बुद्ध के समय में भी ऐसे यज्ञादि में हिंसा करनेवाले ब्राह्मणों का अभाव नहीं था, किन्तु उपरान्त हिन्दू ऋषियों ने जो रचनायें कीं उनमें

---

* The Sutta Nipata (4th century B C) S B E Vol X Pt II pp 47–52

अहिंसा धर्म को प्रधान पद दिया *। यह जैन तीर्थंकर आदि अहिंसा धर्म प्रचारकों के सदुद्योग का फल था।

स्थानाभाव के कारण उक्त व्याख्या का विशद विवेचन करना असम्भव है, तथापि म० महावीर से कुछ काल पहले के धार्मिक वातावरण का दिग्दर्शन कर लेना उचित है कि 'रामायणकाल' में जिन हिंसामय वैदिक क्रियाओं का प्रचार हो गया था, उनका प्रतिकार जैन तीर्थंकरों के अतिरिक्त स्वयं वैदिक ऋषियों ने भी किया। विदेह के राजा जनक, राजपुत्र अजातशत्रु और ऋषि याज्ञवल्क्य इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं। इन सब का अस्तित्व म० अरिष्टनेमि के समय में अनुमान किया जा सकता है। किन्तु इनके कुछ समय बाद ही आसुरी आदि ऋषिगण फिर एक बार हिंसक क्रियाकाण्ड को आग्रह करते हुये मिलते हैं १। म० पार्श्वनाथजी के समय में सचमुच एक वैदिक क्रान्ति के दर्शन होते हैं। एक ओर वह ब्राह्मण परिव्राजक और उनके मत के लोग थे जो हिंसामई यज्ञ और हठवाद के उपासक थे और दूसरी ओर वे श्रमण साधु थे जो अहिंसाधर्म को प्रधानता देना चाहते थे। इस क्रान्ति का ही यह परिणाम था कि एक ही सम्प्रदाय में दो भिन्न मतों को मानने वाले लोग मिलते थे। उदाहरणतः आजीविक सम्प्रदाय को लीजिये। इस सम्प्रदाय की उत्पत्ति यद्यपि जैनधर्म से हुई थी और इसके मुख्य आचार्य मक्खलि गोशाल स्वयं एक

---

* महाभारत (श्री० १०, २५ २८) में अहिंसा पालन करने के भाव का फल एक हजार यज्ञ करने इतना लिखा है। मनुस्मृति (५।४५), हिन्दू पद्मपुराण (अ० २८०), भागवत (७।१५।७ १९), वैशेषिकसूत्र ७, वराहपुराण (८।१२२) वमपराण (अ०१६) अहिंसामई उपदेश से भरे हुए हैं।

१ देखो हमारा "भगवान् पार्श्वनाथ" पृ० ८२-९०

समय जैमुनि थे[१], किन्तु फिर भी वह अपने अनुयायियों को पूर्ण अहिंसक न रख सके। अन्ततः वह मछली आदि को भोजन में ग्रहण करना विधेय समझने लगे थे[२]। यह समय का प्रभाव था। वैदिक ऋषियों एवं अन्य श्रमणों ने इस समय अवश्य ही वैदिक मान्यताओं की रक्षा के लिये उद्योग किया था। वह लोग कट्टर पुरोहित सम्प्रदाय से अलग होकर इस सुधार को करने के लिये उद्यत हुये थे। इन में 'प्रश्नोपनिषद' के अधिष्ठाता पिप्पलाद 'मुण्डकोपनिषद' के रचयिता भारद्वाज, 'कठोपनिषद' के प्रचारक नचिकेतस् प्रभृति ऋषियों ने वैदिक मान्यताओं में ऐसा सुधार किया था जो ज्ञान, यज्ञ, अहिंसा और सैद्धान्तिक प्रौढता का पोषक था[३]। इनके विपरीत पूर्णकाश्यप, पकुड कात्यायन, अजितकेशकम्बलि आदि श्रमणगण वैदिक मान्यताओं को अपने मनोनुकूल सुधार कर पशुहिंसा और मांस भोजन की पुष्टि करते थे[४]। पूर्णकाश्यप 'भगवद्गीता'[५] की तरह कहता

१ पूर्व पुस्तक पृ० २२४–२२९

२ 'लोमहंसजातक' में यही कहा है (आजीविकपजज पव्वजितो अचेलको अहोसि महाविकटभोजनो अहोसि मच्छगोमयादीनि परिभुञ्जि।) किन्तु 'महासीहनाद सुत्त' में उनका भोजन वन फल, मूँग, तिल और तन्दुल लिखा है। (Ajivik[illegible], Pt I, p 55)

३ "भगवान् पार्श्वनाथ" पृ० २८८–३०२

४ "भ० महावीर और म० बुद्ध" पृ०१९–२८ और "भ०पार्श्वनाथ" पृ० ३०१–३०५

पूर्णकाश्यप आदि श्रमण भ० महावीर के प्रायः समवर्ती थे।

५ निम्नलिखित श्लोकों में आत्मा को अवध्य और अमर बतला कर हिंसक युद्ध करने का उपदेश भगवतगीता में दिया गया है—

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।

था कि आत्मा एक अमर और विशुद्ध द्रव्य है, इसलिये किसी जीव को मारने में व्यक्ति को पुण्य पाप नहीं लगता। पकुद कात्यायन की मान्यता भी कुछ इसी ढंग की थी। वह मानता था कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सुख, दुःख और जीव वस्तुओं के मिलन विछुड़न से जीवन का व्यवहार है। इसलिए कोई किसी को विशेष हानि नहीं पहुंचा सकता। बस, पकुद के निकट भी किसी जीव को मारना कुछ महत्व न रखकर केवल व्यवस्थित वस्तुओं का अलग कर देना था, जिस क्रिया में पुण्य पाप का भय नहीं था। और अजित ने यद्यपि यज्ञ श्राद्ध आदि वैदिक क्रियाओं का घोर विरोध किया था, किन्तु उन्होंने पुनर्जन्म और आत्मा के अस्तित्व से इनकार करके प्राणियों की हिंसा करना उचित मानी

अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥ १८॥२॥

अर्थ "हे भारत ! जो आत्मा इस शरीर का स्वामी है, वह नित्य, अविनाशी और अप्रमेय (ध्यान में भी नहीं आने योग्य) है तथा उसे प्राप्त होने वाले शरीर नाशवान और अनित्य हैं। इसलिये हे भारत ! तुम युद्ध करो"।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥

अर्थ – "जो इस (आत्मा को) मारने वाला समझता है, या ऐसा समझता है, कि यह (किसी से) मारा जाता है, वे दोनों ही अज्ञानी हैं। यह आत्मा न तो मरता है और न मारा जाता है"।

गीता के दूसरे अध्याय में उपरोक्त श्लोकों के आगे भी उक्त मत का प्रतिपादन किया गया है जो युक्तियुक्त नहीं है, क्योंकि आत्मा के अमर और अक्षय होने पर भी प्राणी को शरीर आदि प्राण छीनने में कष्ट होता है और घातक के मन में हिंसक भावों का जन्म होता है। अतएव एक दया प्रेमी को किसी प्राणी की हिंसा न करना ही उचित है। भ० महावीर ने गृहस्थ के लिये धर्म भाव से युद्ध करने का विधान करते हुये भी अहिंसाधर्म को पूर्णतः प्रतिपादा था।

थी। इन लोगों के उपदेश का ही यह प्रभाव था कि जनता मांस लिप्सा में फंसी हुई थी। यहाँ तक कि ऐसे तापस भी मौजूद थे जो वर्ष भर के लिये एक हाथी को मार कर रख लेते थे! * सारांश यह कि भ० महावीर के उस समय धर्म और शरीर दोनों के लिये हिंसा करना लोगों में प्रचलित था।

अब कहना होता है कि भ० पार्श्वनाथजी के धर्मोपदेश के कारण ई० पूर्व ८वीं शताब्दि में भारत में जो धार्मिक क्रान्ति जगी थी, वही भ० महावीर द्वारा पूर्ण पल्लवित कर दी गई और उसमें अहिंसा एवं समता भाव को प्रधान पद मिला। आजीविक और बौद्ध सम्प्रदाय के कार्य भी इस सफलता में कारणभूत थे—उनके कारण वातावरण बहुत कुछ करुणा और दया के भावों से ओतप्रोत हो गया था। इन दोनों सम्प्रदायों में अहिंसा ने किस सीमा तक अपना चमत्कार दिखाया, अब आगे यह देख लेना ही उचित है। उपरान्त भ०महावीर ने उसे चरमसीमा पर पहुँचा कर अहिंसा धर्म का चमत्कार दिगन्तव्यापी बना दिया। फलत सब ही मत-प्रवर्तकों को अहिंसा-धर्म चक्र के सामने नत मस्तक होना पड़ा।

(३)

आजीविक संप्रदाय में अहिंसा।

आजीविक सम्प्रदाय का जन्म भ० पार्श्वनाथ के तीर्थ के साधुओं में से हुआ था। आजीविक वह ज्योतिषशास्त्र को अपनी आजीविका का साधन बनाने के कारण कहलाते थे। उनके मुख्य प्रवर्तक मक्खलि गोशाल थे, जो एक समय जैन मुनि

* सूत्रकृताङ्ग श्रुतस्कंध २ अध्याय ६ गाथा ५२ (S B E, pt II p 418)।

रह चुके थे*। इस अवस्था में आजीविक सम्प्रदाय में अहिंसाधर्म को स्थान मिलना अनिवार्य है। किन्तु ध्यान में रखने की बात यह है कि आजीविकों की प्रधानता का समय भ० पार्श्वनाथ के पश्चात् और भ०महावीर के केवली होने के पहले पहले रहा है, और इस समय देश में वैदिक हिंसाकर्म-काण्ड का महत्व निःशेष नहीं हुआ था। इस द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में आजीविक सिद्धान्त का जन्म हुआ था। उनके लिये एक ओर तो वैदिक मत का वानप्रस्थ धर्म और उसका यज्ञकाण्ड था, जिसके निमित्त से लोगों को मांस भोजन द्वारा जिह्वा लम्पटता की छूट थी और दूसरी ओर भगवान् पार्श्वनाथ द्वारा प्ररूपित अहिंसामयी निवृत्ति मार्ग था। और यह हम पहले ही लिख चुके हैं कि भ० पार्श्वनाथ के धर्मोपदेश के कारण उस समय एक धार्मिक क्रांति हो गई थी। फलतः आजीविकों ने वानप्रस्थ धर्म में सुधार कर के अपने सिद्धान्तों का बहु भाग जैनश्रुत के दृष्टिवाद अंग के पूर्व नामक अंश से ग्रहण किया ×। खेद है कि उनके सिद्धान्तों को बताने वाला आज कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। उनके विषय में थोड़ा बहुत ज्ञान, जो भी प्राप्त है वह केवल जैन और बौद्ध शास्त्रों से है। अस्तु,

आजीविकों का मुख्य सिद्धान्त 'नियतिवाद' या 'परिणाम-वाद' था। 'नियति' या 'परिणाम' से उनका मतलब निश्चित प्रारब्ध (Fate) से था। वह जगत के प्रत्येक कार्य को निश्चित मानते थे। 'नियति-पर्याय-भाव'–इन तीन के अनुसार वह जीवों

* हमारा 'भगवान् पार्श्वनाथ' पृ० ३२२–३२०, "भ० महावीर" पृ० १७२ और "वीर" वर्ष ३ अंक १२–१३

× हमारा 'संक्षिप्त जैन इतिहास' भा० २ खंड १ पृष्ठ ७०–७३

को ससार में भ्रमण करने बताते थे *, जिसमें छै शाश्वत और परस्पर विरोधी वस्तुयें—लाभ-अलाभ, सुख-दुख, जीवन-मरण मुख्य थीं §। लोक में हीन दशा को प्राप्त जीव, एक कमल-पत्र पर पड़ा हुआ जलबिंदु भी नियत समय में उन्नति करता हुआ चरम सीमा को पहुंच जायगा, जो उत्कृष्ट रूप में चौरासी लाख महाकल्प काल है। इस काल में जीव को देवयोनि, जड़योनि, नरयोनि में सात-सात जन्मान्तर पूर्ण करने होते हैं, जिसके अन्त में निश्चित रूप में वह चरमोन्नति को प्राप्त हो जाता है। † बस, जब परिणाम में सब बातें स्वतः निश्चित हैं—वह स्वयमेव होकर रहेंगा—तब ज्ञान को महत्व देना, धर्म करना और पुण्य-पाप मानना निरर्थक है ‡। बौद्धों के 'दीघनिकाय' ग्रन्थ में आजीविकों के इस 'नियतिवाद' का विवेचन निम्न शब्दों में हुआ मिलता है —

"एवं वुत्ते भन्ते मक्खलिगोसालो मम् एतद् अवोच 'नत्थि महाराज हेतु नत्थि पच्चयोसत्तान सक्लेसाय, अहेतु अपच्चया सत्ता सकिलिस्सन्ति। नत्थि हेतु, नत्थि पच्चयो सत्तान विसुद्धिया, अहेतु

---

* 'दीघनिकाय' "नियति-सम्गति भाव-परिणता" (P T S) भा० १ पृ० ५३ Fate=नियति Species=पचाय Nature=भाव

§ सब्बेसि पाणाणं सव्वेसि भूयाणं सव्वेसि जीवाणं सव्वेसि सत्ताणं इमाइं छणिकमणिआई वा तणाइं वागरहन्त लाभ, अलाभ, सुहं दुखं, जिवय, मरण।' —भगवतीसूत्र, स० ११ उद्देस १

भावार्थ सब प्राण, सब भूत, सब जीव, सर्व सत्ता—इनके जीवन छै शाश्वत और विरोधी वस्तुओं से सिंचित हैं अर्थात् लाभ-अलाभ, सुख दुख, जीवन मरण।

† यह बात भगवतीसूत्र, (स० १५) और 'दीघनिकाय' (१।१४) से स्पष्ट है।

‡ दीघनिकाय (P T S) भा० २ पृष्ठ ५३ ५४

(principle) जो पहले से मौजूद हो। उनकी शुद्धता अहेतुमय और बिना किसी पहले से स्थित वस्तु की रची हुई है। उनकी उत्पत्ति के लिये यहा कुछ नहीं है जो व्यक्तियों के चारित्र के फल रूप हो दूसरो के कार्यों के परिणाम रूप हो अथवा मानवी प्रयत्नों का फल हो। उनका प्रादुर्भाव न वीर्य में और न प्रयत्न में होता है, तथापि न मानुषिक त्याग से और न मानुषिक शक्ति से। प्रत्येक सत्तात्मक प्राणी, प्रत्येक कीड़ा मकोड़ा, प्रत्येक जीवित पदार्थ चाहे वह पशु हो या वनस्पति, वह सब आन्तरिक (Intrinsic) शक्ति, वीर्य और ताकत से रहित है, किन्तु अपने परिणामाधीन आवश्यकता में फंसा हुआ वह छै प्रकार के जीवनो में सुख दुख भुगतता है। इस तरह संसार में परिणामाधीन भटकता हुआ व्यक्ति चाहे वह मूर्ख हो अथवा पंडित हो नियत महाकल्पों के उपरान्त समान रीति से दुःख का अन्त करता है'।

अतः यह स्पष्ट है कि आजीविक मत में जीव प्रारब्ध के हाथ में बिका हुआ एक कठपुतला है—वह शक्तिहीन है—वह चाहे ज्ञानी और चाहे अज्ञानी अपने आप नियतकाल में दुख का अन्त करेगा। इसीलिये आजीविक गण कर्महीन होने का उपदेश देते थे और पुण्य पाप कुछ भी नहीं मानते थे *। वे अज्ञान मिथ्यात्व के प्रचारक थे। उनकी मान्यता को ध्यान में रख कर अब यह जान लेना सुगम है कि आजीविकों ने अहिंसा तत्व को कहा तक विकसित किया था!

* पातञ्जलि ने अपने भाष्य में उनके विषय में यही कहा है —
"मस्करोऽस्यास्तीति मस्करी परिव्राजक। किं तर्हि मा कृत कर्माणि मा कृत कर्माणि शान्तिर्वः श्रेयसीत्याहातो मस्करी परिव्राजक"
भावार्थ—मस्करी परिव्राजक यह उपदेश देते थे कि कर्म मत करो—कर्म मत करो—शान्ति ही वाञ्छनीय है।

आजीविक मनुष्य-जन्म को परमोत्कृष्ट मानते थे, किन्तु उसे वे 'नियति' के आधीन प्रगट करते थे। इसीलिये मनुष्य का मुख्य कर्तव्य वह यही ठहराते थे कि वह 'नियति' अथवा 'परिणामवाद' के अनुकूल चले, जिसमें दूसरों के स्वत्वों का अपहरण न हो, न्याय और विवेक जागृत रहें, जीवन पवित्र हो, जीवों की हिंसा न की जा सके, आवश्यकतायें कमती हों और जिनपद की प्राप्ति हो[१]। मनुष्य-जीवन में आजीविकगण निश्चित रूप में साधु-दशा का होना भी मानते थे किन्तु आजीविक साधुओं के चारित्र के विषय में दो मत मिलते हैं। एक मत के अनुसार आजीविक साधु को नंगा रहना, स्नान न करना, अहिंसा का पूर्ण पालन करना और एकान्त में वास करना आवश्यक है[२]। इसके इस जीवन का उद्देश्य 'मज्झिमनिकाय' में निम्न प्रकार बताया गया है[३] —

" सो तत्तो सो सीतो एको भिंसन के वने।
नग्गो न चग्गिम आसीनो, एसनापसुतो मुनी॥"

भावार्थ—परमोत्कृष्ट उष्णता और शीत को सहते हुए एकान्त में भयानक वनों में रहते हुये वह मुनि नग्न रहते हैं, जिसके पास आग भी नहीं-मात्र अभ्यन्तर की आग है, [illegible] के उद्योग में है। सचमुच आजीविक साधु का [illegible] और उद्देश्य एक जैन मुनि के अनुरूप है। [illegible] ही उनका भोजन भी सात्विक शाकाहार था। [illegible]

१ दीघनिकाय भा० १ पृ० ५४, [illegible] आजीविक्स भा० १ पृ० २६

२ डा० बारुआ, आजीविकस, भा० १ पृ० [illegible]

३ मज्झिमनिकाय भा० १ पृ० [illegible]

तन्दुल ही उनके भोजन के प्रधान पदार्थ थे, जिनको वह याचना कर के-स्वयं बना करके नहीं-ग्रहण करते थे †। गूलर, वड़, बेर, अंजीर पिलंखु, और पिडाल, लहसुन आदि कन्दमूल वह नहीं खाते थे*। पशुओं के नाक-कान आदि भी नहीं छेदने देते थे और अपने उपासकों को हिंसक व्यापार नहीं करने देते थे। इस प्रकार जैन साधु के चारित्र से आजीविक साधु-जीवन का यह सादृश्य इसी कारण है कि मूल में इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त जैनमत से लिये गये थे, जैसे कि हम अन्यत्र लिख चुके हैं। किन्तु जैन मत जैसा वैज्ञानिक सिद्धान्त आजीविकों का न होने के कारण परिणाम यह हुआ कि अहिंसा-सिद्धान्त उनके निकट वह तात्त्विक रूप न पा सका, जो उसे म० महावीर के हाथों प्राप्त हुआ। 'जब यह निश्चित है कि नियत काल के उपरान्त दु:ख से मुक्ति मिलेगी और पुण्य-पाप कुछ है ही नहीं, ‡ तब संसार में रह कर इन्द्रियजनित भोगोपभोगों का आनन्द क्यों न लूटा जाय?' आजीविक सिद्धान्त ने उसके अनुयायियों में यह भावना पैदा कर दी और इसमें उस समय का हिंसक वातावरण आजीविक

---

† महावीर नाद सुत्त-आजीविक भा०१ पृ०५४ ११

* 'तत्थ खलु इमे दुवालस आजीविय सासगा भवन्ति इवर अरहंतदेवया, अम्मापिउ सुस्सूसगा पंचफलपडिविरया त० उंबरेहिं वडेहिं बोरेहिं, सतरेहिं, पिलंखूहिं, पलंडू लहसुण कंदमूल विवज्जगा, अणिल्लंछिएहिं इत्यादि।'

— भगवतीसूत्र पृ० १२०६

‡ 'मिलिन्दपण्हो नामक बौद्ध ग्रंथ में लिखा है कि "स एक मिलिन्द ने गोशाल से पूछा-'अच्छे बुरे कर्म हैं या नहीं? अच्छे बुरे कर्मों का फल भी मिलता है या नहीं? गोशाल ने उत्तर दिया-'हे सम्राट! अच्छे बुरे कर्म भी नहीं हैं और उनके फल भी कुछ नहीं हैं'।

का सहायक हो गया। फलतः वे अपने अहिंसक जीवन से पतित हो गये। उनके साधु नग्न अवश्य रहे और एकान्तवास भी उनको प्रिय रहा, किन्तु इन्द्रिय लिप्सा में वे मग्न हो गये। मछली आदि हिंसामय पदार्थ वे भोजन में ग्रहण करने लगे और संयम से भी वे गिर गये *। मक्खलि गोशाल ने अपने अन्त समय में चार पेय पदार्थ आदि का जो सिद्धांत स्वीकार किया था, उससे अनुमान किया जा सकता है कि आजीविकों के निकट मद्य भी निषिद्ध नहीं रहा था। 'आठ अन्त की बातें (Eight Finalities) जो गोशाल के जीवन के विषय में कहा जाती हैं, उनमें अन्तिम पान (Last drink), अन्तिम गान (Last song), अंतिम नृत्य (Last dance) और अन्तिम प्रेमाभिवाद्य गान (Last solicitation) भी हैं ×। इससे तथा 'सूत्रकृतांग' के निम्न अंश से यह स्पष्ट है कि अन्त में आजीविकों के निकट अहिंसा और संयम को कोई स्थान शेष न रहा था—यह उनके परिणामवाद का दुष्फल था। 'सूत्रकृतांग' में वर्णन है —

"गोशाल ने कहा कि 'जिस प्रकार तुम्हारे (जैनों के) मतानुसार महावीर का शिष्यसमूह से वेष्टित होना पाप नहीं है, उसी प्रकार हमारे मतानुसार एक साधु जो एकाविहारी है,

---

* "आजीविका दुक्खं पवज्जित्वा अचेलको अहोसि रजोजल्लिको, पविवित्तो अहोसि एकविहारी मनुस्से दिस्वा मिगो विय पलायि, महाविकट भोजनो अहोसि मच्छगोमयादीनि परिभुञ्जि। —जातक १ पृ० ३९०

भावार्थ—"आजीविक परिव्राजक नग्न, धूल धूसरित एक विहारी, मनुष्यों के पास से मृग की तरह भागनेवाला होता है, उसका भोजन महा विकट मछली, गोबर आदि होता है।"

× आजीविकास, भा० पृ० ३०१

कुछ भी पाप नहीं करता। यदि वह शीत जलका व्यवहार करता, वनफलों को खाता, औद्देशिक भोजन करता और स्त्रियों के साथ सहवास करता है"।

"जैन मुनि आर्द्रकिन इस पर कहा कि 'यदि यह बात है तो गृहस्थों और साधुओं में फिर अन्तर ही क्या रहेगा? यह अनन्त संसार में भ्रमण करेगा"। (सूत्रकृतांग पृ० २ व्या० ६)[1]।

अतः यह स्पष्ट है कि आजीविक संप्रदाय में यद्यपि अहिंसा धर्म को स्थान मिला, परन्तु वह अपने लचर सिद्धान्त के कारण उसे पनपा न सका—समय की गति के साथ वह बह गया। म० महावीर जैसी सैद्धान्तिक अहिंसा के दर्शन उस में नहीं होते। हां, 'परिणामवाद' में भाग्यवशात् जिन प्राणियों की रक्षा हो जाय वह अच्छा, वैसे अपने आराम के लिये यदि जीवों की हिंसा करना पड़े तो कुछ पाप पुण्य नहीं। और फिर जब जीव आदि सब पुरुषार्थहीन न कुछ हैं, तब हिंसा काहे की? यहां पर भला कहिये, अहिंसा कहां रही? उसकी तुलना म० महावीर की अहिंसा से क्या की जाय? अहिंसा का जो भी प्रभाव आजीविकों पर पड़ा, वह जैन अहिंसा का ही था, परन्तु वह अपने शिथिल सिद्धान्त के अनुसार उसे स्थिर न रख सके और उनके द्वारा जनता का कुछ भी हित नहीं हुआ। मक्खलि गोशाल एक पागल की तरह मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसको अपने किये का पछतावा भी बहुत रहा। अन्त में उसने धर्म और कर्म दोनों ही तरह हिंसा का विधान कर दिया था, जैसे कि उक्त विवेचन से स्पष्ट है। बहुत करके इसी लिये म० बुद्ध ने उसे जनता का शत्रु कहा था।२

---

1 Jaina Sutras (S B E) XLV p 414

२—अंगुत्तरनिकाय, भा० १ पृ० ३३ "नाहं भिक्खवे अञ्ञम एक

(४)

म० गौतमबुद्ध द्वारा अहिंसा का विकास।

मक्खलिगोशाल और शाक्य-श्रमण गौतमबुद्ध ये यद्यपि समकालीन थे, परंतु आयु और साधुपद की अपेक्षा वह गौतम से पहले के ठहरते हैं अर्थात् म० बुद्ध के धर्म-चक्र प्रवर्तन के पहले से ही आजीविक सम्प्रदाय के नेता का प्रचार जनता में था * और यह पहले लिखा जा चुका है कि आजीविक गण अन्ततः हिंसा-रत हो गये थे। हिंसा, कुशील, मद्य आदि व्यसनों से उन्हें घृणा नहीं रही थी। यह दुर्गुण मात्र उन्हीं में नहीं थे, बल्कि ब्राह्मण वानप्रस्थ भी इन से अछूते न थे। उनके निकट विवाह अथवा प्रेम करना, सोमरस के रूप में मद्य का पीना और यज्ञों में पशुओं का होमना धार्मिक कर्म थे ×। जब साधुओं की यह हालत थी तब साधारण जनता की क्या दशा होगी, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। पतन म० गौतमबुद्ध और

पुग्गलम् पि समनुपस्सामियो एवं बहुजनहिताय पटिपन्नो बहुजन असुखाय बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं यथयिदं भिक्खवे मक्खलि मोघपुरिसो।" (Ajivikas, p 20)।

* Historical Gleanings, p 25-26

×—मांस, मधु, मदिरा का प्रचार आर्य लोगों में था, यह बात अन्यान्य ग्रंथों से स्पष्ट है। (Hindu Ethics, pp 443-467) याज्ञवल्क्य, आसुरी आदि ब्राह्मण ऋषिगण त्याग अवस्था में भी स्त्री, पुत्र धन, सम्पत्ति आदि भोगोपभोग की वस्तुओं को रखना बुरा नहीं समझते थे (ए हिस्ट्री आफ दी प्री बुद्धिस्टिक इन्डियन फिलासफी, पृ० १५३-२२५)

भगवान महावीर के लिए इस धार्मिक क्रान्ति को सुधारना आवश्यक था। मालूम ऐसा होता है कि भ० अरिष्टनेमि के बाद भारत में पशुदम ब्राह्मणवाद का दौर दौरा हो गया था। भगवान् पार्श्वनाथ ने उसके प्रति लोगों को सशङ्क बनाकर एक धार्मिक क्रान्ति को जन्म दे दिया, जिसको पूर्ण विकसित भ० बुद्ध और भ०महावीर ने किया। यह बात ध्यान देने की बात है कि भ० बुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार भ० महावीर के सर्वज्ञ होने के पहले से ही करना आरम्भ कर दिया था।* अतः उक्त समस्त धर्म औरकर्म दोनों ही दृष्टि से हिंसादि पापों को मिटा देने का श्रेय पड़ा हुआ था। निम्न लिखित पंक्तियों में यह दर्शाने का प्रयत्न है कि भ०बुद्ध ने इस कार्य में कहां तक सफलता प्राप्त की थी।

भ० गौतम बुद्ध ने पहले ही एक सीमा तक भगवान् महावीर के समान शाक्य श्रमणों और उपासकों के लिए (१) हिंसा, (२) झूठ, (३) चोरी, (४) कुशील और (५) मद्य इन पांच पापों का त्याग करना आवश्यक बतलाया था। उन्होंने कहा :—

"He who takes life, whose mouth is full of lies
Who steals, and fouls another's wife,
A slave to drink be even in this life,
The root of his own fortunes undermined. 246-7
—Dhammapada

भावार्थ—जो प्राणियों के प्राण लेकर हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, व्यभिचार सेवन करता है और मद्य पीता है, वह इस जीवन में ही अपना सत्यानाश कर लेता है। भ० बुद्ध का यह उपदेश समय के सर्वथा अनुकूल था। उस

* भगवान महावीर आरभ० बुद्ध, पृ० १००–११५

समय की परिस्थिति को सुधारने के लिये उक्त पाच बातों का प्रचार करना ही आवश्यक था। भ० महावीर ने भी समय की इस कमी को दूर करने के लिये एक श्रावक (गृहस्थ) के लिय ही सर्व प्रथम मद्य-मास मधु और पंच उदम्बरादि फलों का त्याग करना अथवा पंच अणुव्रतों का पालन करना आवश्यक बतलाया था। वह स्वय बाल ब्रह्मचारी रहे और परमोत्कृष्ट सयमी जीवन बिता कर लोगों के समक्ष एक अनुकरणीय आदर्श बन गये। उनके इस उद्योग मे उस समय के वातावरण की एकदम काया पलट हो गई थी! किन्तु प्रस्तुत निबंध में हमें अहिंसा धर्म का विवेचन करना ही इष्ट है। अस्तु; इस विषय पर जब हम आगे म० बुद्ध के धर्मोपदेश का अवलोकन करते हैं तो उन्हें यह उपदेश देते हुये पाते हैं —

"किसी को न सताओ, किसी को न मारो, जो दुःख में हैं उनकी सहायता करो।" १

"जान बूझकर चींटी या कीड़ा, किसी भी प्राणी के प्राणों का अपहरण मत करो।"२

"यदि कोई भिक्षु इस नियम का उल्लंघन कर तो उसे संघ म निकाल दो।" ३

---

१ 'Not to oppress not to destroy!"- Comfort and befriend those in suffering 'The Buddha charit by Ashwaghosha (S B E XIX) p 234

२ "A Bhikkhu ought not intentionally to destroy the life of any being down to a worm or an ant '-Mahavagga, 1 78 2

३ " I prescribe, O Bhikkhus, that you expel a novice (from the fraternity) when he destroys life —Mahavagga 1, 61

"दयालु हृदय होना परमावश्यक है—जनता को अपने इकलौते बेटे क समान मानना उचित है।" १

म० गौतमबुद्ध की इस करुणामई शिक्षा का प्रभाव लोगों पर, मुख्यत. उनक भक्तों पर यह पड़ा कि उन्होंने धर्म के लिये और जान बूझ कर-संकल्प करके हिंसा करना छोड़ दिया। हिंसक यज्ञों को करना बहुत म लोगों न बन्द कर दिया। कितने ही ब्राह्मण परिव्राजक भी उनके इस उपदेश से प्रभावित हुये और उन्होंने भी पशुओं का यज्ञ रचाना त्याग दिया। पांचों इन्द्रियों का निग्रह करके वास्तविक यज्ञ उन्होंने किया २। म० गौतमबुद्ध ने इस यज्ञ को ही करने का उपदेश दिया है। दया में उनका हृदय भीगा हुआ था। वह कहते थे कि दया क बिना मनुष्य विवेक से काम न ले सकेगा। वह दया को ठीक समय की वर्षा के समान गुणों का उत्पादक मानते थे। * यही उनके निकट

---

१ "The great requirement is a loving heart! to regard the people as we do an only son"–Buddhacharita, p 234

२ When a man with trusting heart takes upon himself the precepts abstinence from destroying life, abstinence from taking what has not been given, abstinence from evil conduct in respect of lusts, abstinence from lying words abstinence from strong intoxicating maddening drinks the root of carelessness-that is a sacrifice, better than open largesse etc"

–Kutadanta-Sutta

* The lack of mercy is to men the cause of the greatest disturbance, as it corrupts the action of their minds and words and bodies Mercy indeed engenders virtues, as a fructifying rain

धर्म था; यथा,—

धर्म्मदयास्वरूपेण त्रैलोक्ये च प्रख्यापिता ।
सर्व्वे तथागतानाञ्च जननी इति ख्यापिता ॥"

भावार्थ—"तीनों लोकों में दया ही धर्म कहा गया है और यही तथागतों (बुद्धो) की जननी मानी गई है।" †

इन उल्लेखों से म० गौतमबुद्ध के निकट अहिंसा की विशेष मान्यता का दिग्दर्शन हो जाता है। उनमे स्पष्ट है कि म० बुद्ध न समय की आवश्यकतानुसार अहिंसा धर्म का निरूपण किया था। उन्होंने धर्म के नाम पर-यज्ञों में होने वाली हिंसा का तो पूर्णत निषेध कर दिया, किन्तु यह बात उनके बूते की भी न थी कि साधारण जनता में मे स्वाद और शौक के लिये होने वाले प्राणिवध को रोक देते। यही कारण है कि बौद्ध अहिंसा में म०महावीरकी अहिंसामें बाह्यसादृश्यहोत हुये भी गहन अन्तर है। अहिंसा-तत्व को पूर्ण विकसित करने का श्रेय तो, म० गांधी के शब्दों में, म० महावीर को प्राप्त था। अत यह हम निस्संकोच कह सकते हैं कि म० गौतमबुद्ध की अहिंसाविषयक मान्यता म० महावीर द्वारा प्रतिपादित अहिंसा-तत्व के आंशिक रूप की भी तुलना नहीं कर सकती, क्योंकि बौद्ध अहिंसा को पालते हुये

makes the crop grow"

"—The Jatakamala (S B B I) p 241

† भावार्थ—"दया का अभाव मनुष्यों के सब से बड़ी असुविधा है, क्योंकि उसका अभाव उनके मन, वचन और काय सम्बंधी कार्यों को ठीक ठीक नहीं होने देता। दया से ही सद्गुणों का जन्म होता है, जैसे समय की वर्षा से कृषि फलती है।"—जातकमाला,

† See 'Svayambhu Purana of Nepal Dharma"

एक बौद्ध भिक्षु तक मांस और मछली को भोजन में ग्रहण कर सकता है * । इस के विपरीत एक जैन श्रावक गृ(हस्थ)-साधु की बात तो न्यारी है—उन चीजों का नाम सुनना भी पसंद न

* "*I prescribe, O Bhikkus that fish is pure to you in three cases if you do not see, if you have not heard, if you do not suspect (that it has been caught specially to be given to you)*"

—The Vinaya Texts, (S B E) XVII p 117.

अर्थात्—"हे भिक्षुओ ! मैं (बुद्ध) मच्छी को भक्षण करना तीन दशाओं में उचित ठहराता हूं। पहले यदि तुम न देखो, दूसरे यदि तुम न सुनो, तीसरे यदि तुम यह संशय न करो कि यह मच्छी खास तुम्हारे लिए पकड़ी गई है।"

—विनय पिटक।

"*Newly converted minister invited Buddha with 1250 Bhikkus and gave meat too Samgha with Buddha ate it*" -Mahavagga, VI 25 2

भावार्थ-"नवदीक्षित मंत्री ने बुद्ध को १२५० भिक्षुओं सहित आहार के लिए निमंत्रित किया और मांस भी परोसा। संघ ने बुद्ध सहित उसे खाया।"

—महावग्ग ६।२५।२

"Destroying living beings, killing, cutting binding stealing, speaking falsehood, fraud, and deception worthless reading, intercourse with another's wife,—this is Amagandha (sin) but not the eating of flesh"

—Suttanipata, p 40

भावार्थ-प्राणियों की हत्या करना, उनका वध-बंधन, चौर्य, असत्य, छल, माया, विकथा, और परस्त्री सेवन यह सब पाप हैं, परन्तु मांस भक्षण पाप नहीं है।

—सुत्तनिपात

करगा; यद्यपि वह एक जैन साधु की अपेक्षा बहुत नीचे दर्जे की आंशिक अहिंसा का पालन करता है। बेशक एक बौद्ध भिक्षु स्वयं तो जीव-वध नहीं कर सकता है, किन्तु वह मांस भोजन का त्यागी नहीं है। इस जिह्वा-लम्पटता के कारण ही बौद्ध-अहिंसा का महत्व बहुत कुछ हलका हो जाता है। बौद्ध भिक्षुओं की तृप्ति के लिये उनके भक्तों को मांस भोजन कराना ही पड़ता है। बौद्ध शास्त्रों में ऐसे उल्लेख अनेक हैं। और तो और स्वयं म०बुद्ध के लिये कई दफे मांस भोजन तैयार किये जाने के भी उल्लेख मिलते हैं‡। म०बुद्ध इसमें कुछ भी दोष नहीं मानते थे। "सूत्रकृताङ्ग" में बौद्धों की इस मान्यता का खण्डन किया गया है §, 'क्योंकि मांस खरीदने पर भी कोई व्यक्ति उसके पाप से नहीं बच सकता। निस्सन्देह ग्राहक संकल्प करके पशु को स्वयं नहीं मारता है; परन्तु मांस खरीद करके परोक्ष रीत्या उस को मरवाता तो है। म० बुद्ध को जैन-अहिंसा की यह बारीक बात पसन्द न थी और इस में उस समय का लोक प्रवाह कार्यकारी था। म० बुद्ध उसके विरुद्ध अपनी आवाज ऊँची न उठा सके। उनकी इस उपेक्षा से बौद्ध-अहिंसा भी अपनी कमी को पूरा न कर सकी—वह भी अधूरी रही और आज नाम मात्र को शेष है। म० महावीर की अहिंसा जैसा वैज्ञानिक प्रवाह उस में देखने को नहीं मिलता।'

किन्तु म० गौतमबुद्ध ने अपने भक्तों को जो युद्ध में हिंसा करना आवश्यक और उचित बतलाया था, वह म० महावीर के

‡ अंगुत्तरनिकाय–अट्ठकानिपात सहीसुत्त १२, तथा पञ्चकनिपात–उग्गगहपतिसुत्त ४, महावग्ग ६।३१, मज्झिमनिकाय बालसुत्त ४।१७। १८।

§ Jaina Sutras (S B E XLV p 414)

तत्सम्बन्धी उपदेश के सर्वथा अनुकूल है। वैशाली के सेनापति सिंह ने म० बुद्ध के पास जाकर इस विषय में वार्तालाप की थी। उन्होंने पूछा था —

"भगवन्! मैं एक सैनिक हूँ। राजा ने मुझे अपने कानून की रक्षा करने और युद्ध में लड़ने के लिए नियत किया है। क्या अपराधियों को दण्ड देना दया के विरुद्ध है? क्या आपके मतानुसार स्वदेश, स्वजाति और स्वपरिवार की रक्षार्थ युद्ध करना अनुचित है?"

म० बुद्ध ने उत्तर दिया—"दण्ड के अधिकारियों को दण्ड अवश्य मिलना चाहिए, किन्तु दया और प्रेम को सदा अपने साथ रक्खो। यह दोनों शिक्षायें परस्पर विरुद्ध नहीं हैं। तथागत का मत है कि समस्त लड़ाइयां शोचनीय हैं। किन्तु उसका मत यह कदापि नहीं है कि सत्य और न्याय की रक्षा के लिये युद्ध में सम्मिलित होना अपराध है। तथागत का मत है कि स्वार्थ और अहङ्कार का पूर्णतया निरोध कर दुष्टों और पापी जनों की शक्तियों के सम्मुख आत्मसमर्पण कदापि न करो। हल में सदा संग्राम करते हुये जीने की इच्छा करो। किन्तु हे सिंह! यह ध्यान में रखना चाहिये कि तुम्हारा संग्राम स्वार्थ और द्वेष, लोभ और अभिमान की प्रेरणा से उत्तेजित न हो।" §

म०महावीरने भी ठीक यही शिक्षा युद्ध के विषय में दी थी*

§ भगवान् बुद्धदेव-काशीनाथकृत पृष्ठ १५७ १५८।

* भ० महावीर ने अपने गृहस्थ-अनुयायियों के लिये विरोधी हिंसा विधेय रक्खी थी, क्योंकि जगत में रहकर आत्मरक्षा आदि के लिये मनुष्य को आततायी का मुकाबिला करना ही होता है। गृहस्थों में भगवान् महावीर के प्रमुख भक्त राजा श्रेणिक बिम्बसार और चेटक थे। इन दोनों ने कई लड़ाइयां लड़ीं थीं, यह

किन्तु उनका अहिंसक सत्याग्रह या कष्ट सहन का मार्ग (Cult of Suffering) केवल उन्हीं की चीज है। म० बुद्ध के धर्म में उसके दर्शन नहीं होते। अतः अहिंसक क्रान्ति को पूर्ण सम्पन्न

बात इतिहास प्रसिद्ध है, जैसे हम आगे देखेंगे। सम्राट् कुणिक अजातशत्रु ने इन्द्रभूति गौतम महाराज से श्रावक के व्रत ग्रहण किये थे, उस पर भी उन्होंने वैशाली के राजाओं से युद्ध किया था। (देखो उत्तरपुराण पृ०७०६ और सं० जैन इतिहास भा०२ पृ०२६)। अन्तिम केवली जम्बुकुमार बाल्पन में ही धार्मिकवृत्ति के लिये हुये थे, फिर भी उन्होंने राजा मृगाङ्क से संग्राम (ई० पूर्व ५२१ ४५०) ठाना था। (देखो संक्षिप्त जैन इतिहास, भाग २ खंड १ पृष्ठ १७१)। ऐसे ही अनेक शास्त्रीय उदाहरण हैं जिनसे यह स्पष्ट है कि कर्तव्य वश अंतिम उपाय रूप युद्ध करने का विधान म० महावीर ने गृहस्थों के लिये किया था। जैनधर्म के इस युगकालीन प्रथम तीर्थंकर श्रीऋषभदेव ने भी ऐसा ही विधान किया था और उनके पुत्र श्रीभरत महाराज अणुव्रती होते हुये भी चतुरंग सेना लेकर छः खण्ड पृथिवी को विजय करने निकले थे (आदिपुराण पर्व २६ ३३)। इसी अनुरूप श्री सोमदेवसूरि (दि० स०१०१६) ने 'यशस्तिलकचम्पू' में और 'नीतिवाक्यामृत' में एक श्रावक के लिये कर्तव्यरूप युद्ध करने का उपदेश दिया है। 'नीतिवाक्यामृत' के 'युद्धसमुद्देश' में पहले उन्होंने यही कहा है कि —

"बुद्धियुद्धेन परं जेतुमशक्तः शस्त्रयुद्धमुपक्रमेत् ॥ ४ ॥"

अर्थात्—जब एक शत्रु बुद्धि के युद्ध तर्क यानी समझाने से न जीता जा सके तो उसको जीतने के लिये शस्त्र युद्ध करना चाहिये। इसी बात को निम्न सूत्रों में आचार्य ने पुनः कहा है —

"दण्डसाध्ये रिपावुपायान्तरमग्नावाहुति प्रदानमिव ॥ ३९॥"

"यन्त्र शस्त्राग्निक्षारप्रतीकारे व्याधौ किं नामान्यौषधं कुर्यात् ॥४०॥"

अर्थात्—"जो शत्रु केवल युद्ध करने से ही वश में आ सकता है, उसके लिये अन्य उपाय करना अग्नि में आहुति देने के समान है। जो व्याधि यंत्र, शस्त्र या क्षार से ही दूर हो सकती है, उसके लिये और क्या औषधि हो सकती है?"

प्रचार में जो कमी रह गई थी, उसको तब भ० महावीर ने ही पूरा किया था, यह उनके सैद्धान्तिक अहिंसा धर्म के विवेचन से स्पष्ट है। म० बुद्ध ने जीवों पर दया करने का और धर्म के

इन उद्धरणों से युद्ध के विषय में जैनधर्म का मन्तव्य स्पष्ट हो जाता है। कषायाधीन होकर संग्राम करना जैनधर्म में निषिद्ध है पर धर्म, देश आदि की रक्षा व स्वतन्त्रता के लिये न्याय युद्ध करने का उपदेश भगवान् महावीर ने दिया है। युद्ध करते हुए भी भावों में समता रहे, जैनी के युद्ध में यही विशेषता है। कई एक ऐतिहासिक घटनायें इस नियम का श्रावकों द्वारा पालन किये जाने की साक्षी स्वरूप उपलब्ध हैं। प्रसिद्ध वीरमार्तण्ड श्री चामुण्डरायजी गंग राजाओं के सेनापति थे। उन्होंने ग्यारहवीं शताब्दि में अनेक लड़ाइयां लड़ी थीं किन्तु युद्ध क्षेत्र में भी उनके परिणाम समताभाव में रहते थे–युद्धक्षेत्र में रहते हुए ही उन्होंने कनड़ी में चामुण्डराय पुराण की रचना की थी। (देखो वीर वर्ष ७ पृष्ठ १२)। यदि परिणाम उनके कषाय से ओत प्रोत होते तो यह संभव नहीं था कि वह रणक्षेत्र में एक धर्मशास्त्र की रचना कर सकते। इसी प्रकार अणहिल्लपुर (गुजरात) के अहिंसक सोलंकी राजा भीमदेव के मन्त्री श्रावक आभू श्रीमाली जैन वैश्य थे। एकदा जब राजा राजधानी में नहीं था तब मुसलमानों ने राजधानी पर आक्रमण कर दिया। रानी ने नगर की रक्षा का भार आभू को सुपुर्द किया। आभू ने बड़ी वीरता से नगर की रक्षा की, किन्तु युद्ध में भी वह सामायिक क्रिया को नहीं भूलता था। हाथी के हौदे में बैठे २ वह ध्यान करता और सामायिकपाठ पढ़ता था। इस प्रकार के धर्म युद्ध में हिंसा और अन्याय के कारण संसार में रह नहीं सकती परतन्त्रता। इसी दृष्टि से भ० महावीर के युद्ध विधान का महत्व है। इस युद्ध को जैनशास्त्रों में वात्सल्य और प्रभावना धर्म कहा है। "पंचाध्यायी" (अध्याय० श्लो० ८०८–८०९) और 'लाटीसंहिता' (वि०सं० १६४१) में यह उल्लेख इस प्रकार है —

"वात्सल्यं नाम दासत्वं सिद्धार्हद्बिम्बवेश्मसु।
संघे चतुर्विधे शास्त्रे स्वामिकार्ये सुभृत्यवत्॥ २०८॥

स्थान पर हिंसा न करने का उपदेश दिया अवश्य; किन्तु म० महावीर इससे एक कदम आगे बढ़ गये-उन्होंने पेट और मौज शौक के लिए होने वाली हिंसा को भी इस पवित्र भूमि से सब निकाल बाहर कर दिया! यह उनकी महान् विजय थी!

अपवादस्य समर्थोऽस्ति द्विषु सुधर्मिणाम् ।
स तु धारोपसर्गेषु तत्परः स्यात्तदत्यये ॥ २०९ ॥
यद्वा न ह्यात्मसामर्थ्यं यावन्मन्त्रासिकोशकम् ।
तावद् द्रष्टुं च श्रोतुं च तद्बाधां सहते न सः ॥२१०॥ (लाटीसंहिता)

भावार्थ—अर्हत, सिद्ध, मुनि और चतुर्विध संघ की स्वामी-सेवकवत् सेवा करना ही वात्सल्य धर्म है। उक्त सिद्ध परमेष्ठी, अर्हत्बिम्ब जिनमंदिर, मुनि, आर्यिका, श्रावक श्राविका आदि में से किसी एक पर घोर उपसर्ग होने पर सम्यग्दृष्टि (जैनी) को उसे दूर करने के लिए तत्पर रहना चाहिये अथवा जब तक अपनी सामर्थ्य है और जब तक मंत्र, असि (तलवार की ओर) और धनादिक द्रव्य (खजाना) है, तब तक वह सम्यग्दृष्टि पुरुष उस पर आई हुई किसी प्रकार की बाधा को न तो देख ही सकता है और न सुन ही सकता है। लाटी संहिता में 'प्रभावना धर्म' के विषय में कथन है —

"बाह्यः प्रभावनाङ्गोऽस्ति विद्यामन्त्रासिभिर्बलैः ।
तपोदानादिभिर्जैनधर्मोत्कर्षो विधीयताम् ॥ ३२० ॥"

भावार्थ—विद्या, मंत्र, असिबल, (तलवार की ओर) तप, दान आदि के द्वारा जैनधर्म का उत्कर्ष करना बाह्य धर्म प्रभावना है। दक्षिण भारत के जैनी और शैव राजाओं की लड़ाइयां करके धर्म प्रभावना की गहराई ली गई कही जा सकती है। जैनाचार्य ने असभ्य कुरुम्ब लोगों को सभ्य बना कर जैनधर्म में दीक्षित किया था। उन्होंने उन्हें शास्त्र और शस्त्र दोनों में पारङ्गत कर दिया था। परिणामतः कुरुम्ब लोग दक्षिण भारत के एक प्रदेश पर शासनाधिकारी हो गये थे और उन्होंने धर्म प्रभावना के लिए अपने असिबल को सदैव प्रगट किया। (Original Inhabitants of India p 236)। इन उद्धरणों से जैनधर्म में युद्ध विषय के विवेचन का खासा दिग्दर्शन हो जाता है।

(५)

तत्कालीन राज्य और अहिंसा !

तब भ० महावीर की अहिंसा प्रधान वाणी का असर देश के इस ओर से उस छोर तक फैल गया था—प्रायः वातावरण बिल्कुल अहिंसक बन गया था। उस समय के लगभग सब ही बड़े बड़े शासक भ० महावीर की शरण में आये थे और बहुतों ने अहिंसा महाव्रत को ग्रहण करके मोक्ष लक्ष्मी को वरण किया था। कौशाम्बी के राजा शतानीक, सिन्धुसौवीर के राजा उदायन, हेमाङ्ग देश के नृप जीवन्धर प्रभृति नरपुंगव इस सम्बंध में उल्लेखनीय हैं। जिस समय भ० महावीर विहार करते हुये कौशाम्बी (वर्तमान कोसम जिला इलाहाबाद) पहुंचे थे तो उस समय वहां के राजा शतानीक ने उनकी विशेष विनय की थी और अन्त में वह भगवान के संघ में सम्मिलित हो गया था। चम्पा (वर्तमान भागलपुर) के राजा दधिवाहन भी मुनि हो कर वीर संघ में आ मिले थे। इनकी रानी अभया ने सेठ सुदर्शन का व्यभिचार का मृषा दोष लगाया था, जिसके कारण सेठ सुदर्शन विरक्त होकर मुनि हो गये थे। कलिंग (वर्तमान ओड़ीसा) के राजा जितशत्रु भी मुनि होकर अहिंसा धर्म का प्रचार करने में लग गये थे। काम्पिल्य (फर्रुखाबाद) के राजा भी निर्ग्रन्थ साधु हुये थे। सिन्धुसौवीर (वर्तमान सिन्ध) और कच्छ देश के राजा उदयन भी दिगम्बर मुनि हुये थे। दक्षिण भारत में हेमांगदेश (वर्तमान महीसूर Mysore) के राजा जीवंधर ने मुनि व्रत धारण किये थे। इन तथा और भी अन्य राजाओं ने, जो भ० महावीर के समकालीन थे, महाव्रतों को ग्रहण करके अहिंसा तत्व का

पूर्णत' पालन और प्रचार किया था। * भ० महावीर की इस उक्ति को कि 'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा'—'जो कर्म क्षेत्र में शूरवीर हैं, वे ही धर्म मार्ग में शूर होते हैं' इन्हीं नर-वीरों ने सार्थक बनाया था। किन्तु इनके अतिरिक्त अनेक वीर ऐसे थे जिन्होंने अहिंसातत्व को व्यावहारिक रूप में ग्रहण करके लोक कल्याण और अपना हितसाधन किया था। संक्षेप में राजगृह के राजा श्रेणिक बिम्बसार (ई० पू० ५८२-५५७) और उनके पुत्र राजकुमार अभयकुमार, वारिषेण आदि, श्रावस्ती (सहेट महेठ, जिला गोरखपुर) के राजा प्रसनजित और उनकी रानी मल्लिका (ई० पूर्व छठी श०), वैशाली (बसाढ जिला मुजफ्फरपुर) राष्ट्रसंघ के सभापति राजा चेटक, उनके पुत्र सेनापति सिंह, अंगदेश का अधिपति कुणिक, जो वर्तमान बिहार प्रान्त के एक भाग का शासक था और उपरान्त मगध राज्य का अधिकारी हुआ था, बनारस का राजा जितशत्रु, उज्जैन का राजा चंडप्रद्योत (ई० पूर्व छठी शताब्दि), मथुरा का राजा उदितोदय, पोदनपुर का राजा विद्राज, दशार्ण देश (मालवा) के राजा दशरथ, गिरिनार (जूनागढ) के तत्कालीन राजा इत्यादि क्षत्रिय वीर भ० महावीर के उपासक थे और उन्होंने यथाशक्य वीर-धर्म का पालन किया था। ×

उन सब का परिचय इस छोटे से निबंध में कराना नितान्त असम्भव है फिर भी यहां पर उस समय के दो श्रेष्ठ राज्यों का उल्लेख करके यह स्पष्ट कर देना उचित है कि तब भ० महावीर की अहिंसा ने किस प्रकार देश को पराक्रमी और समृद्धिशाली

*संक्षिप्त जैन इतिहास, भा० २ खंड १ पृष्ठ ९३-१०१
×संक्षिप्त जैन इतिहास, भा० २ खंड १ पृष्ठ ९२-१३८

बनाया था।

तब मगध और वृजि राज्य प्रसिद्ध थे। मगध में सम्राट् श्रेणिक शासनाधिकारी थे, किन्तु वृजि राज्य में कोई एक व्यक्ति राजा न था। वहां प्रजातंत्र के ढंग पर शासन किया जाता था। उस राजसंघ में क्षत्रियों के लिच्छिवि, ज्ञातृ, वैदेहिक आदि आठ कुलों के प्रतिनिधि शामिल थे और उनके प्रधान राजा चेटक थे। वृजिसंघ की राजधानी वैशाली थी[१]। मगध का राज्य अभी समृद्धि को प्राप्त न हुआ था कि वृजि राज्य उन्नति की चरम सीमा का उपभोग कर रहा था। म० महावीर का सम्बंध इस ही राज्य से था—उनके कुल के ज्ञातृ (नाथ)क्षत्री इसमें सम्मिलित थे और राजा चेटक स्वयं उनके नाना थे। बस, स्वभावतः म० महावीर की शिक्षा का इन लोगों पर मुख्य प्रभाव पड़ा। वृजिसंघ के प्रायः अधिकांश सदस्य-लिच्छिवि, ज्ञातृ, वैदेह आदि—जैनधर्म में दीक्षित थे। फलतः उनका शासन न्याय, दया और पराक्रम का आदर्श था। सच बात तो यह है कि जहां अहिंसा-प्रेम होगा, वहां सुमति स्वतः आ विराजेगी और तब ऐक्य का होना अनिवार्य है, जिसका एक मात्र परिणाम समृद्धि है। वृजिराज संघ में यही हुआ। म० महावीर के अहिंसा धर्म को वहां के प्रधान चेटक और रत्नापतिसिंह न ही नहीं बल्कि अगणित क्षत्री-पुत्रों और अन्य लोगों ने ग्रहण किया—म० बुद्ध के कई बार प्रयत्न करने पर भी जैनों की संख्या वहां अत्यधिक रही[२] और वह अहिंसा धर्म का पालन करने का पूरा ध्यान रखती थी, यह बात स्वयं बौद्ध ग्रंथ से स्पष्ट है। एकदा म० बुद्ध ने

१ म० महावीर और म० बुद्ध पृ० ६–१०
२ क्षत्रिय क्लैंस इन बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० ८६

वैशाली में मांस भोजन ग्रहण किया। इस पर जैनियों (निर्ग्रन्थों) ने बड़ा आन्दोलन मचाया। उन्होंने गली-गली और चौराहे-चौराहे पर खड़े हो होकर इसका विरोध किया और बुद्ध के इस कार्य को "हिंसामई बताया"[१]। बौद्ध लेखक का यह कथन वैशाली जैन अहिंसा की प्रधानता का द्योतक है। अब यह मानना अनुचित नहीं है कि इस अहिंसा-प्रधानता का ही यह सुपरिणाम था कि —

"All these Vajjis lived in great amity and concord which was a particular mark of their confederacy and this union coupled with their martial instincts and the efficiency of their martial institutions made them great and powerful amongst the nations of north eastern India"— some Ksatriya Clans in Buddhist India p-60

अर्थात्-"यह सब वृजिलोग परस्पर बहुत ही प्रेम और सलाह सुमति से रहते थे, जो उनके संघ का एक खास चिन्ह था। इस ऐक्यता के साथ ही उनके वीरोचित भावों और श्रेष्ठ सैनिक प्रबन्ध ने उन्हें उत्तर-पूर्वी भारत में एक महान् और शक्तिशाली राष्ट्र बना दिया था।"

भ० महावीर की अहिंसा सचमुच वीरों के लिये सत्य पथ प्रदर्शक है। स्वयं जैन शास्त्रों में लिखा है, राजा चेटक इतने धर्म-कर्मी थे कि वह रण भूमि में भी जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति और आराधना करना नहीं भूलते थे। उस पर भी, उन्होंने कई बड़ी बड़ी लड़ाइयां मगध के राजाओं से लड़ी थीं और उनमें उनकी विजय हुई थी। भारत की उन्नति में यही एक बाधक

१ Vinaya Texts, S B E, Vol xvii, p.116

थे। आखिर मगध नरेश अजातशत्रु (ई० पू० ५५४-५२), ने कूटनीति से काम लिया। उसने अपने मन्त्री वस्सकार को जान बूझ कर झूठ मूठ निकाल दिया। वज्जियन लोगों ने समझा अजातशत्रु सचमुच वस्सकार से रुष्ट होगया है। अतएव उन्होंने वस्सकार मन्त्री को अपने यहां नियुक्त कर लिया। वस्सकार ने अपनी चालाकी से उनमें फूट डाल दी। वे सब प्रेम धर्म को भूल गये और अजातशत्रु की मन चीती हो गई! *स्वतन्त्र वृजि अजातशत्रु के आधीन ई० पू० ५४० में हो गये।* इस एक उदाहरण में ही अहिंसा और प्रेम सिद्धांत का महत्व स्पष्ट है!

किन्तु इसके साथ ही मगध सम्राट् श्रेणिक के चरित्र पर भी एक दृष्टि डाल लेना अनुचित नहीं है। श्रेणिक एक छोटे से राजा के पुत्र थे और प्रारम्भ में वह बौद्ध थे। उपरान्त राना चेटक की पुत्री चेलनी के प्रभाव में वह जैन हो गए थे। चेलनी को ही उन्होंने पट्टरानी बनाया था! भगवान् महावीर के गृहस्थ शिष्यों में वह प्रमुख थे। म० महावीर से उन्होंने हजारों प्रश्न किये थे और आखिर वह क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो गये थे। उनके महान् व्यक्तित्व में भी अहिंसा का चमत्कार प्रगट होता है। जैन अहिंसा को उन्होंने अच्छी तरह समझा था-वह पक्के जैनी थे[१]। और जैनी के लिये अन्याय और अत्याचार मेटना परम धर्म है। श्रेणिक अपने इस धर्म पालन में किसी से पीछे नहीं रहे थे। उन्होंने कई बार 'अमारीघोष' कराकर जीव मात्र को प्राण दान—अभयदान दिया था। जीवों की रक्षा और प्रजा की भलाई के लिये वह सदैव तत्पर रहते थे। एक दफा गांधार देश के राजा

१ आक्सफर्ड हिस्ट्री आफ इन्डिया, पृ० ४१

सात्यकि ने उन पर दूत द्वारा कहला भेजा कि 'भारत पर इस समय महा सरट के बादल उमड पड़े हैं-ईरानियों ने हम पर धावा कर दिया है-हमारे अकेले के बूतेका यह काम नहीं है कि उनको मार भगायें और स्वदेश की रक्षा करें। आइये, आप हमारा हाथ बंटाइये[२]।' यह जैन वीर झट तैयार हो गया और उस ईरानियों को भारत में आगे न बढ़ने दिया। यह घटना ई० पू० छठा शताब्दि की अनुमान की जाती है। उपरान्त जैन सम्राट् नन्दवर्द्धन ने ई० पू० ४२८ में ईरानियों को भारत सीमा से निकाल बाहर कर दिया था[३]। इस प्रकार दो जैन सम्राटों द्वारा भारतकी रक्षा हुई थी। जैन अहिंसा का यह प्रभाव था। उसने श्रेणिक और नन्दवर्द्धन को कायर नहीं बनाया था। नन्दवर्द्धन ने कई लडाइया लड़कर नंद साम्राज्य को विस्तारित किया था।

इस ही प्रकार अन्य राज्यों में पहुंच कर भ० महावीर की अहिंसा ने चमत्कार दिखाया था और उस समय देश धर्मात्मा, धनी और बलवान था। यूनानी लेखकों के वर्णन से इस व्याख्या का समर्थन होता है[४]।

---

२ 'With the reign of Bimbisara (582-554 B C) the kingdom of Magadha entered upon that career of expansion which was closed only with the conquest of Kalinga by Asoka The king of distant Gandhara sent an embassy to Bimbisara probably with the object of invoking his assistance against the threatened advance of the Achaemenid power ' Modern Review Oct 1930 p 438

३ जर्नल ऑफ बिहार एण्ड ओड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, भा० १ पृ० ७७-८६

४ ... देखो.

(६)

मौर्य साम्राज्य में अहिंसा का चमत्कार!

भ० महावीर के मुक्त हो जाने पर उनके अहिंसा धर्म का प्रतिपादन उनके शिष्यगण करते रहे थे। देश में अहिंसा का साम्राज्य बनाये रखने की उन्होंने दिल में ठान ली थी। किन्तु ब्राह्मणों ने फिर एक बार अपना आधिपत्य जमाने की कोशिश की, यद्यपि वह इसमें असफल रहे। फलत जैन और बौद्ध श्रमण अपने अहिंसा-संदेशको दिगन्तव्यापी बनाने में सफल हुए।

सम्राट् श्रेणिक के बाद भारतीय इतिहास में सम्राट् चन्द्रगुप्त का नाम प्रसिद्ध है। इन्होंने अपने बाहुबल से समस्त उत्तरीय भारत को जीत लिया था और मौर्य साम्राज्य की नींव डाली थी। यह श्रुतकेवली भद्रबाहु के शिष्य थे। अधिकांश विद्वानों का मत है कि चन्द्रगुप्त ने अपने अन्तिम जीवनकाल में जैनमुनि की दीक्षा ग्रहण की थी[1], परन्तु उनकी यह मान्यता ठीक नहीं है, क्योंकि श्रावक हुए बिना सहसा कोई जैन मुनि नहीं हो सकता। उस पर चन्द्रगुप्त के देश 'मोरिय' अथवा 'मौराष्य' में भ०महावीर का उपदेश विशेष कार्यकारी हुआ था। उनके दो प्रमुख शिष्य मौर्य्य ही थे। और 'मुद्राराक्षस' नाटक से यह स्पष्ट है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय में जैन मुनियों का ही प्राबल्य था वह राज महलों तक में पहुंच कर उपदेश दिया करते थे[2]। स्वयं सम्राट्

---

१ श्री नरसिंहाचार्य कृत "श्रवणबेलगोल" नामक अंग्रेजी पुस्तक देखो.

२ भारतीय नाटककारों ने इन्हीं साधुओंका उल्लेख अपने नाटकों में किया है जिनका तत्सम्बन्धी ऐतिहासिक घटना के समय प्राबल्य था। 'मुद्राराक्षस नाटक' में चन्द्रगुप्त का वर्णन है और उसमें जीवसिद्धि नामक क्षपणक जैन है। देखो "वीर" ५ अंक १६ पृ० २८७-२९२

चन्द्रगुप्त इन श्रमणों का आदर-सत्कार किया करते थे, यह बात यूनानी एलची मैगास्थनीज भी कहता है[३]। अतः चन्द्रगुप्त को प्रारम्भ में एक जैन मानना ठीक है।

अच्छा तो, जैन अहिंसा का प्रभाव सम्राट् चन्द्रगुप्त पर क्या पड़ा था ? इस प्रश्न के उत्तर में हम देखते हैं कि उन पर इसका प्रभाव वही पड़ा था जो जैन अहिंसा का पड़ना चाहिये। सम्राट् ने पहले ही घोषित कर दिया था कि 'प्रजा की समृद्धि शान्ति तथा उद्योग पर निर्भर है[४]। और उन्होंने इस घोषणा को सफल बनाने में कुछ उठा न रक्खा। पहले ही अपने भुजबल से उन्होंने भारतीय अत्याचारियों का अन्त करके प्रजा को ऐक्य सूत्र में बांध लिया और फिर विदेशी आक्रमणकारी सिल्यूकस को भी मार भगाया। इस प्रकार अपने उद्योग के बल से उन्होंने अपने साम्राज्य को शान्ति के द्वार पर ला उपस्थित किया। और फिर साम्राज्य का आन्तरिक प्रबन्ध इस सुचारु और व्यवस्थित ढंग से किया कि देश में सम्पूर्णतः शान्ति और समृद्धि का दौर दौरा हो गया, जिसे देखकर विदेशी भी दंग रह गये। वह भारत से ईर्ष्या करने लगे और उसके प्रशंसा के गीत गाने लगे[५], उन्होंने चन्द्रगुप्त के साम्राज्य में उनकी इस नीति को सोलह आने चरितार्थ होते हुये देखा कि "जो राजा यह शिवंकर प्राणिमात्र के हित में तत्पर होता है और प्रजा का शासन करता है वह चिरकाल तक पृथ्वी का उपभोग करता है[६]।"

---

३ जनरल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी भा० ९ पृ० १७६

४ कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ० २३०

५ मैकक्रिन्डल, ऐंशियंट इण्डिया देखो।

६ कौटिल्य अर्थशास्त्र, प० ६

सचमुच चन्द्रगुप्त ने अपने शासन काल में प्राणीमात्र का हित करने का उद्योग किया था। मद्य मांस-द्यूत आदि के विषय में उन्होंने जो नियम बनाये थे, वह कम से कम हिंसा होने देने के भाव की साक्षी देते हैं १। बल्कि उन्होंने आज्ञा निकाली थी कि जो पशुओं को स्वयं मारे या मरवाये अथवा स्वयं चुराये या चुरवाये उसको मृत्युदंड दिया जाय। २' यह आज्ञा अहिंसा प्रेम की उत्कट लगन की द्योतक है। उस पर, पशुओं की ही नहीं बल्कि वृक्षों की रक्षा का भी प्रबन्ध सम्राट् ने किया था ३। इस हालत में यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि उन्होंने मानव जाति के हित के लिये कितना न उद्योग किया होगा! हम तो जानते हैं, यह उनके उत्कट अहिंसा प्रेम का परिणाम था। और उसी दयालु हृदयता ने हा सम्राट् को राज पाट छोड़ कर जंगल का रास्ता लेने के लिए बाध्य कर दिया। जब गहरा दुर्भिक्ष पड़ा तपोधन साधुओं का भोजन मिलना भी दुष्कर हो गया-सम्राट् से जीवों का यह कष्ट न देखा गया। जितना हो सका रक्षा का प्रबन्ध उन्होंने कराया-उनने पहले से ही क्षेम नियम बना रक्खे थे*, किन्तु फिर भी यह अहिंसा का महा अनुष्ठान करने के

१ कौटिल्य अर्थशास्त्र, अधिकरण २ प्रकरण ४० ४३ व ४६ और अधि० ८ पृ० १२०

२ कौटिल्य अर्थशास्त्र (लाहौर) पृ० ११६

३ पूर्व पुस्तक, पृ० २१५

४ पूर्व पुस्तक (अधि०४ पृ० ७८) पृ० ११०

* इन नियमों में एक नियम यह भी था कि "जिस देश में फसल अच्छी हो उसमें अपनी प्रजा को लेकर (राजा) चला जावे।" इसी अलस्य संभवतः सम्राट् दक्षिण भारत को गए थे।

लिए श्रुतकेवली भद्रबाहु के निकट मुनि होकर दक्षिण भारत को चले गये और वहां चन्द्रगिरि पर्वत-श्रेणियों में उन्होंने घोर महा तपश्चरण किया कर स्वर्गधाम सिधार गए।

किन्तु चन्द्रगुप्त के द्वारा अहिंसाधर्म की उन्नति हुई उसे उनके पौत्र सम्राट् अशोक ने खूब ही विकसित करदी। कलिङ्ग के युद्ध में एक लाख आदमी काम आए। दयालु हृदय अशोक यह नर-संहार न देख सके फलतः उन्हें 'सम्बोधि (सम्यग्दर्शन) का लाभ हो गई। सम्प्रदाय और पंथ मोह को छोड़ कर वह एक मात्र सत्य और अहिंसा का प्रचार करने के लिये जुट पड़े। सम्राट होने के साथ साथ वह एक उत्कट धर्म प्रचारक बन गए। धर्म्म सम्बन्धी अपनी आज्ञाओं को पत्थरों पर खुदवा कर साम्राज्य भर में लगवा दिया और उनका पालन कराने के लिये उन्होंने राज कर्मचारी नियत कर दिए। अशोक के यह धर्मोप-देशक विदेशों तक पहुंचे थे।

अशोक ने "जीव-रक्षा के सम्बन्ध में बड़े कड़े नियम बनाये। यदि किसी भी जाति या वर्ण का कोई भी मनुष्य इन नियमों को तोड़ता था तो उसे बड़ा कड़ा दण्ड दिया जाता था। कुल साम्राज्य में इन नियमों का प्रचार था। इन नियमो के अनुसार कई प्रकार के प्राणियों का वध बिलकुल ही बन्द कर दिया गया था। जिन पशुओं का मांस खाने के काम में आता था उनका वध यद्यपि बिलकुल तो नहीं बन्द किया गया तथापि उनके सम्बन्ध में बहुत कड़े कड़े नियम बना दिए गये, जिससे प्राणियों का अन्धाधुन्ध वध होना रुक गया। साल में ५६ दिन तो पशुवध बिलकुल ही मना था। अशोक के पंचम स्तंभ-लेख में यह सब नियम स्पष्ट

दिये गये हैं१।" और यह नियम जैनधर्म के अनुसार है। ब्राह्मण और बौद्ध अहिंसा के नियमों का उनमें सामञ्जस्य ही नहीं बैठता२। डा० कर्न सा० कहते हैं —

"His (Asokas') ordinances concerning the sparing of animal life agree much more closely with the ideas of the heretical Jains than those of the Buddhists " —(Manual Buddism p 275)

मान यही है कि अशोक की शासन लिपियों का अहिंसाधर्म बौद्धों की अपेक्षा जैनों के धर्म के बहुत ही निकट है। और सचमुच जैन नियमों ने सम्राट् के धर्म पर खासा प्रभाव डाला था—उनका धर्म सर्वथा जैन नियमों के अनुकूल था, यह हम अन्यत्र सिद्ध कर चुके हैं३। अत. सम्राट् अशोक की धर्मविजय भ० महावीर के अहिंसा धर्म की विजय है। इस विजय से भारत की उन्नति चरमसीमा को पहुची थी, यह मंगलमय अहिंसा नियमों के पालन का फल था। इससे अहिंसातत्व का राज्यों पर कैसा उत्तम प्रभाव पड़ता है, यह दृष्टव्य है।

अशोक के पश्चात् सम्राट् सम्प्रति मौर्य्य (ई० पूर्व २२० २२१) ने भी अहिंसा धर्म प्रचार का उद्योग किया था। यह भ० महावीर के धर्म के अनन्य भक्त थे। उन्होंने भी अनेक

१ अशोक के धर्म लेख, पृ० ५१

२ हमारा "सम्राट् अशोक और जैनधर्म" नामक ट्रैक्ट देखो।

३ सम्राट् अशोक और जैनधर्म देखो।

शासनलिपियाँ खुदवा कर दयाधर्म का प्रचार किया था[1]। मुख्य बात तो यह थी कि उन्होंने धर्मोपदेशकों के द्वारा धर्म प्रचार का महान् उद्योग किया था। आर्य ही नहीं अनार्य देशों में भी अहिंसा धर्म का झंडा उन्होंने फहराया था[2]। नीच ऊंच सब ही प्राणियों ने उनके उद्योग से सुख शान्ति को पाया था। सम्प्रति के अनुरूप उसका भाई शालिशूक भी अहिंसक वीर था। यद्यपि उसका राज्य क्षणिक था, परन्तु उसने असल में 'धर्म विजय' की थी। हिन्दू 'गार्गीसंहिता' में उसके विषय में कहा गया है,—

"तस्मिन् पुष्पपुरे रम्ये जनाराम शताकुले ।
ऋतुकर्म सुपाहूत· शालिशूको भविष्यति ॥
स राजा कर्मनिरतो दुष्टात्मा प्रियविग्रहः ।
सौराष्ट्रमर्दयन् घोर धर्मवादी ह्यधार्मिकः ॥
स ज्येष्ठ भ्रातरं साधु संप्रति प्रथयन् गुणैः ।
स्थापयिष्यति मोहात्मा विजयं नाम धार्मिकम् ॥

अर्थात्—"उस मनोहर पुष्पपुर (पटना) में धनप्रियाकरणड का विरोधी शालिशूक होगा। यह दुष्ट राजा पाप मार्ग में निरत होकर सौराष्ट्र के लोगों को दुखी करेगा और 'धर्मविजय' की घोषणा करेगा। जिससे उसके ज्येष्ठ भ्राता संप्रति के धर्म-जैनधर्म की प्रभावना होगी। इस प्रकार सौराष्ट्र (गुजरात) में जैनधर्म का प्रचार शालिशूक द्वारा हुआ था।

---

१ "जैन" का जुबिली विशेषाङ्क पृ० ६७८।
२ परिशिष्ट पर्व देखो।

किन्तु शालिशूक के बाद मौर्यवंश में ऐसा कोई साहसी और बलवान राजा न रहा जो अहिंसा धर्म की रक्षा कर सकता। वह इतने हीनबल हो गये कि उनका ब्राह्मण सेनापति स्वयं राजसिंहासन पर अधिकार जमा बैठा और उसके साथ ही मौर्य्य साम्राज्य का "जैन अहिंसा स्वर्णकाल" भी समाप्त हो गया।

उपसंहार।

"सव्वेपाणा पिया उया, सुहसाया दुह पडिकूला अप्पिय, वहा।
पिय जीविणो,जीवि उकामा, तम्हा णातिवाएज्ज किंचण॥"

भगवान् महावीर ने अहिंसातत्व की प्रधानता के लिये यह ठीक ही कहा कि "सब प्राणियों को आयु प्रिय है, सब सुख के अभिलाषी हैं, दुख सब के प्रतिकूल है, वध सब को अप्रिय है सब जीने की इच्छा रखते हैं, इससे किसी को मारना अथवा कष्ट पहुंचाना उचित नहीं है[1]।" वीर प्रभु का यह उपदेश निखर सत्य है। जो बात स्वयं तुम्हें अप्रिय है, वह दूसरे को कैसे अच्छी लगेगी? फिर तुम्हें क्या अधिकार है कि तुम उस अप्रिय व्यवहार का प्रयोग अन्य के प्रति करो? अहिंसातत्व का महत्व इस विचारसरणी में गर्भित है। और उस पर यह लाञ्छन ही नहीं आ सकता कि वह अव्यावहारिक है। भ० महावीर ने तो उसका विवेचन इस वैज्ञानिक ढंग पर कर दिया है, जैसे कि

१ भंडारी "भ० महावीर" पृ० २९८

पूर्व पृष्ठों में संक्षेप में बताया जा चुका है, कि हर कोई उसका पालन बड़ी सुगमता और श्रद्धा से कर सकता है। जो चाहे कि 'पूर्ण' अहिंसक मैं बन जाऊँ, उसके लिए भी मार्ग साफ है। 'अहिंसा महाव्रत' का पालन उसे करना होगा। किन्तु ऐसे वीर पुरुष तो विरले होते हैं। साधारण जनता तो हीन-साहस हुआ करती है और वह उस मार्ग को ही पसन्द करती है, जिसमें कष्ट बहुत कम हो। ऐसे लोगों के लिये, खासकर राष्ट्र और नागरिक धर्म के सुचारु पालन के लिये भ० महावीर ने 'अहिंसा अणुव्रत' का विधान किया है। उनका यह विधान सर्वथा सैद्धान्तिक है, क्योंकि भाव ही किसी कार्य के होने या न होने में मुख्य है—भाव के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता। बस, अहिंसा-तत्व के पालन में भी भाव ही प्रधान है। भगवान् महावीर ने यही बताया है,—

"मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा।
पयदस्स णत्थि बंधो हिंसामित्तेण समिदस्स।।"

"सद्दुष्ट जो हिंसो दुट्ठमणो सो समणो अहिंसे होइ"

"जिसका मन दुष्ट—हिंसक—प्रमत्त भावों से भरा हुआ है, वह यदि कायिक रूप से किसी को न भी मारता है, तो भी हिंसक ही है।' इस लिये जिसके भाव दयालु—अहिंसामई हैं, उसमे यदि कायिक हिंसा हो भी जाय तो भी उसके अहिंसाव्रत में कुछ दोष नहीं आता है। इस दृष्टिकोण को ध्यानमें रखने से भ० महावीर की अहिंसा की पूर्णता स्पष्ट हो जाती है। उस जैसा वैज्ञानिक और व्यवस्थित विवेचन अन्यत्र दृष्टि नहीं पड़ता! और न यह राष्ट्रोन्नति में बाधक है। पूर्व पृष्ठों में जो दो-एक राज्यों पर के अहिंसा प्रभाव का दिग्दर्शन कराया गया है, वह इस व्याख्या का प्रमाण है। उस पर, श्रेणिक या चन्द्रगुप्त जैसे अहिं-

सब वीर शासक एक-दो नहीं, अनेक हैं। मौर्य साम्राज्य के बाद हुए अहिंसक वीरों में विशेष उल्लेखनीय कलिङ्ग सम्राट् ऐल खारवेल, सम्राट् विक्रमादित्य, सम्राट् कुमारपाल, सम्राट् अमोघवर्ष प्रभृति नरपुङ्गव हैं; जिन्होंने अपने शासनकाल में अहिंसा तत्त्व का चमत्कार चारों ओर फैलाकर प्राणियों को सुख साता का अनुभव कराया था। इनमें सम्राट् खारवेल कलिङ्ग साम्राज्य के अधिपति (ई०पूर्व २०७-१५२) थे। वह जैनधर्म के परम भक्त थे और अन्तिम जीवन में ई० पूर्व १७० में उन्होंने कुमारी पर्वत पर विशेष रूप से व्रत नियमों का अभ्यास किया था। किन्तु इस प्रकार धार्मिक वृत्ति को रखते हुए भी खारवेल न कोई सफल युद्ध लड़े थे। उन्होंने अपने भुज विक्रम से सारे भारत की दिग्विजय की थी। विद्वान् उनको 'भारत नेपोलियन' कहते हैं। सचमुच वह जन्म जात योद्धा और दक्ष सेनापति थे। साथ ही वह एक प्रजा हितैषी आदर्श राजा थे[1]। जैन अहिंसा का गौरव उनके जीवन में प्रकाशमान है। उनके उपरान्त सम्राट् विक्रमादित्य का नाम उल्लेखनीय है। वह मालवा के प्रसिद्ध 'शकारि' उपाधिधारी राजा थे। आन्ध्रवंशी गर्द्दभिल्ल के वह पुत्र थे और प्रतिष्ठान (पैठन) में आकर उन्होंने मालवा में शकों को मार भगा कर वहां अपना राज्य जमाया था। पहले वह शैव थे, परन्तु उपरान्त एक जैनाचार्य के उपदेश से प्रभावित होकर वह जैनी हो गये थे। उनसा प्रतापी राजा भारत में जब-तब ही हुए हैं[2]। ई०

[1] जर्नल आव दी बिहार एण्ड ओडीसा रिसर्च सोसाइटी, भा० ३ पृ० ४२५-४८४

पूर्व ५७ में उन्होंने अपना विक्रम संवत् चलाया था। विक्रमादित्य के पश्चात् दक्षिण भारत में राष्ट्रकूट राजाओं ने अच्छा यश प्राप्त किया था। उनमें सम्राट् अमोघवर्ष विशेष प्रख्यात थे। उस समय उनकी गणना संसार के महान शासकों में की जाती थी। वह जैनाचार्य श्रीजिनसेनस्वामी के श्रावक शिष्य थे। उन्होंने अपने शासनकाल (८१५-८७७ ई०) में कितने ही संग्रामों में विजय प्राप्त की थी। उनकी धर्मनिष्ठा इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि आखिर वह जैन मुनि होकर अहिंसा का पूर्णतः पालन करने लगे थे[१]। अमोघवर्ष के समान ही गोर्जर सम्राट कुमारपाल थे। उन्होंने सन् ११४३ से ११७३ ई० तक गुजरात पर शासन किया था। वह प्रसिद्ध जैन साधु हेमचन्द्राचार्य के शिष्य थे। अपने गुरु का वह बड़ा आदर करते थे। अपने राज्य में उन्होंने जीव रक्षा के लिये कठोर नियम बना रक्खे थे और उन्होंने कई बार अपने राज्य में अमारी घोषणा कराई थी। अहिंसा प्रचार के लिये उपदेशक भी नियत किये थे। उनकी देखा देखी राजपूताने के कई हिन्दू राजाओं ने भी हिंसा रोकने के लिये शासन लेख खुदवाये थे[२]। सारांशतः इन और ऐसे ही उदाहरणों से जैन अहिंसा का प्रभाव स्पष्ट है। उस पर, और तो और, भ० महावीर के शिष्यों ने जैन शिक्षा का मृदुल प्रभाव यवन-सम्राट् अकबर के हृदय पर डालने में भी सफलता पाई थी। सम्राट अकबर जैन अहिंसा के कायल हो गये थे; यहाँ तक कि लोग उन्हें "जैनी" ही हुआ

---

१. भारत के प्राचीन राजवंश, भा० ३, पृ० ३१-४१

२. अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया, पृ० १९० और राजपूताने का इतिहास, भा० १ पृ० ११

समझने लगे थे[1]। सम्राट् ने विशेष आज्ञापत्र निकाल कर हिंसा कर्म का निषेध किया था और जीव हत्या बन्द करा दी थी[2]। उन्होंने स्वयं मांस-भोजन का त्याग कर दिया था और इस विषय में बड़ी उपयोगी शिक्षाओं का प्रचार किया था, यथा ,—

"ससार दया मे जितना वश में होता है, उतना दूसरी किसी भी चीज मे नहीं होता। दया और परोपकार, ये सुख और दीर्घायु के कारण हैं।" — (आईने-अकबरी, खड ३, पृ०३८३)

"यद्यपि अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ मिलते हैं, तथापि मनुष्य जीवित प्राणियो को दुख देने, मारने और भक्षण करने की ओर प्रवृत्त रहते हैं, इस कारण उनकी अज्ञानता तथा निर्दयता है। कोई भी आदमी निर्दयता को रोकने में जो आन्तरिक सौन्दर्य है, उसको नहीं देखता। प्रायः लोग अपने शरीर को पशुओं की कब्र बनाया करते हैं!"—(आ०अ०, भा०१ पृ०६१)

"मेरे राज्याभिषेक की तारीख के दिन, प्रतिवर्ष, ईश्वर का उपकार मानने के लिए किसी भी मनुष्य को मास नहीं खाना चाहिए, जिसमे सारा वर्ष आनन्द के साथ निकले।"

"कसाई, मच्छीमार और ऐसे ही दूसरे मनुष्यों के, जिनका

---

1 "But the Jain holy men undoubtedly gave Akbar prolonged instruction for years, which largely influenced his actions, and they secured his assent to their doctrines, so far that he was reputed to have been converted to Jainism"—Jain Teachers of Aabar by V A Smith p 335

२ देखो, सूरीश्वर और सम्राट्।

सरासर हिंसा करना ही है—निरपराधस्थान, धर्मों से अलग होने चाहिये।" —(सूरीश्वर और सम्राट पृ० १७८, १७९)

सारांशतः जैन अहिंसा का अद्भुत प्रभाव अकबर पर पड़ा था और इसी प्रभाव के कारण उसका शासन भी प्रेम और एकता के लिए प्रसिद्ध हो गया है। इस प्रकार यह बिलकुल स्पष्ट है कि भ० महावीर की अहिंसा लोक हितकारी है—जीवमात्र उसके व्यवहार में अक्षय सुख शांति को पा सकता है। स्वाधीन सुख और सफल जीवन इस अहिंसा-पालन का सुमधुर फल है। आइए हम सभी इसकी आराधना करने का संकल्प कर लें और याद रखें कि मनुष्य के लिए अहिंसा से बढ़कर और कोई साधन नहीं है। बस, ईश प्रसन्न हो, आइये —

"[illegible] की खान इन्द्रपुरी की नसैनी[2] जान,
पाप रज खंडन को पौन रासि[3] पेखिये।
भव दुख पावक बुझायवे को मेघमाला,
कमला मिलायवे को दूती ज्यों विशेखिये॥
सुगति वधू सो प्रीत, पालवे को आलीसम[4],
कुगति को द्वार दृढ़, आगल[5] सी देखिये।
ऐसी दया कीजै चित, तिहूँ लोक प्राणी हित,
और करतूत काहू, लेखे में न लेखिये॥"

* इतिशम् *

---

१. सुख २. सीढ़ी ३. पवन की राशि ४. सखी ५. रोक

भगवान महावीर की अहिंसा
और
भारत के राज्यों पर उसका प्रभाव



लेखक—
बाबू कामताप्रसाद जैन एम. आर. ए. एस.
सम्पादक 'वीर'



भूमिका लेखक—
साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ, एम. आर. ए. एस.
सुपरिन्टेन्डेंट सरदार म्यूजियम तथा सुमेर पब्लिक लायब्रेरी
और
भूतपूर्व प्रोफेसर जसवन्त कालेज जोधपुर

प्रकाशक—
मंत्री जैन मित्र मंडल धर्मपुरा देहली।



प्रथम बार १०००

वैसाख
वीर निर्वाण सं० २४५९
मई १९३३

मूल्य ≡)

प्रेम, क्लोथ मारकैट देहली में छपा।

जैन मित्र मण्डल द्वारा प्रकाशित ट्रैक्ट

1 उपासनातत्त्व, पंडित जुगलकिशोरजी मुख्तार हिन्दी मुफ्त
2 अहिंसा, ब्र० शीतलप्रसादजी
3 जैनधर्म व परमात्मा स्व० बाबू ऋषभदासजी वकील मेरठ उर्दू =)
4 मेरी भावना, प० जुगलकिशोरजी मुख्तार मुफ्त
5 जैनधर्म शिक्षावली, स्व० बाबू ऋषभदासजी वकील
6 रत्नकरण्ड श्रावकाचार, पंडित गिरधर शर्मा
7 सप्तव्यसन या हफ्तऐब, मुंशी [illegible] अग्रवाल
8 ज्ञानसूर्योदय दूसरा भाग बा० [illegible] वकील
9 [illegible], मा० [illegible] जौहरी
10 [illegible], ला० [illegible] जैन [illegible]
11 [illegible], बा० [illegible] मुख्तार
12 [illegible] " "
13 गुलज़ार [illegible] ([illegible] का उर्दू तर्जुमा))।
14 जैनधर्म शिक्षा प्रथम भाग, बा० [illegible] वकील)
15 रिपोर्ट मण्डल, [illegible] सन् १०२६ तक उर्दू हिन्दी =)
16 [illegible], स्व० पं० [illegible] उर्दू -)॥
17 [illegible], बा० [illegible] मुख्तार " -)
18 जैनधर्म का [illegible] धर्म सिद्धान्त का [illegible] है, बाबू [illegible] बी०ए० [illegible], हिन्दी)॥
19 भगवान् महावीर और उनका [illegible], बा० [illegible] उर्दू -)
20 [illegible], बाबू [illegible] मुख्तार , मु०
21 रिपोर्ट वीर-जयन्ती सन् १९२३ [illegible] हि० उर्दू =)
22 अहिंसा धर्म पर [illegible] बा० [illegible] ,)॥
23 [illegible], [illegible] मुख्तार ")॥